हंस गीता

स्वामी निरंजन

हंस गीता

स्वामी निरंजन

संयोजिका : मिका

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**
प्रथम मुद्रण : **गुरुपूर्णिमा,२००६**
द्वितीय संसस्करण **: वसन्त पंचमी, २०१६**
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** भुवनेश्वर - २ (उड़िसा) फोन : *9437006566*
प्रच्छद प्रस्तुति : **विभु**
मूल्य : ₹ ***90/-***

असतो मा सद्गमय

यह प्रार्थना शिष्य के द्वारा अपने श्रद्धेय सद्गुरु के प्रति की जाती है । इस प्रार्थना का तात्पर्य यह है कि हे गुरुदेव ! आप मुझे असत, कल्पित, मिथ्या, माया संसार की प्राप्ति के साधन रूप यज्ञ, तप, दान, पूजा, पाठ, मंत्र, माला, तीर्थ, व्रत, ध्यान, समाधि आदि साधनों से वैराग्य दिला परमात्म प्राप्ति के सत्य मार्ग पर चलावे । क्योंकि यह वेदान्त का सिद्धान्त है कि **'यत् यत् साध्यं तत् तत् अनित्यम्'** अर्थात् कर्म द्वारा, साधन द्वारा जो-जो फल प्राप्त होता है वह यहां से लेकर स्वर्ग, बैकुण्ठादि धाम तक अनित्य एवं क्षण भंगुर ही है । तब गुरु का कर्तव्य हो जाता है -

साधु ऐसा चाहिये जैसे सूप सुभाव ।
सार सार को गहिलहे, थोथा देई उड़ाव ।।

अर्थात् वेद शास्त्र के अनेक कन्टकीय साधन मार्गों से मुमुक्षु को बचाकर सरल, सहज, सुगम आनन्द प्रद ज्ञान मार्ग में जोड़ दे । जैसे सूप का स्वभाव सार तत्त्व को रख असार तत्त्व को उड़ा देता है अथवा नीर-क्षीर विवेकी हंस, दूध जल मिश्रित पेय पदार्थ से केवल दूध को ही ग्रहण करता है एवं असार जल तत्त्व को ग्रहण नहीं करता या असार जलतत्त्व उसकी चोंचको स्पर्श ही नहीं होता है ।

इसी प्रकार जिस जिज्ञासु के मन से निष्काम कर्म, उपासना द्वारा मल विक्षेप दूर हो चुके हैं एवं जिसमें केवल एक स्वरूप का ही अज्ञान आवरण दोष शेष रह गया है उसके लिये सद्गुरु केवल स्वरूप ज्ञान का ही एक मात्र उपदेश करते हैं । सद्गुरु के लिये मल, विक्षेप दोष से रहित आवरण दोष युक्त उस मुमुक्षु हेतु एक मात्र स्वरूप ज्ञानोपदेश ही कर्तव्य रूप होता है । जैसे आयुर्वेद ग्रन्थ में अनेकों रोगों के लिये अनेकों औषध बतलाई गई है किन्तु रोगी केलिये उन अनेकों औषधों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है उसे तो अपने वैद्य द्वारा निर्धारित रोग निवृति सम्बन्धित औषध ग्रहण से ही प्रयोजन रहता है ।

इसी प्रकार वेद में कर्म काण्ड के ८०,००० मंत्र , उपासना काण्ड के १६,००० मंत्र एवं ज्ञान काण्ड के ४,००० मंत्र का प्रतिपादन हुआ है । अनेकों साधको के लिये अनेक साधन मार्ग बतलाये गये हैं किन्तु मुमुक्षु के लिये तो उनमें से गुरु मुख द्वारा एक तत्त्वमसि महावाक्य का सेवन ही कर्तव्य रूप है । लाखों मंत्र से उसे कोई प्रयोजन नहीं है । इसी उदेश्य से यह **'हसं गीता'** रचना करने की मन में फुरना जाग्रत हुई है । आशा है मुमुक्षुओं के लिये यह ग्रन्थ उसी प्रकार उपादेय होगी जैसा की उदाहरण रूप सूप व हंस असार का त्याग कर सार

अनुक्रमणिका

जन्म का आधार

मन में काम विचार जगना पाप रूप नहीं है । यदि तुम्हारे पिता के मन में काम विचार न आता तो तुम कहाँ होते ? इसमें बुरा कहां है ? नैसर्गिक है । इसके पार हो जाने के लिये इतनी चिंता क्यों ? इसमें बुरा कुछ भी नहीं है ।

तुमने कभी सुना है कि कोई नपुंसक ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हुआ है ?

काम ऊर्जा ही ज्ञान का जागरण है वही काम ऊर्जा वासना से मुक्त होती है तो राम बन जाती है । काम वासना में पाप कुछ नहीं है । यह देह की प्राकृतिक अवस्था है । परमात्मा ने काम वासना दी है तो उसका कोई प्रयोजन है । परमात्मा में काम वासना प्रथम जाग्रत हुई तभी तो सृष्टि का प्राकट्य हुआ । जीवन को स्वीकार करो । यह प्रभु का प्रसाद है । जैसा उसने दिया है वैसा स्वीकार करो ।

अगर तुमने काम वासना को सहज स्वीकार कर लिया तो तुम उसके पार एक दिन हो जाओगे । साक्षी बनो । रोओ चिल्लाओ मत । शिकायत मत करो । परमात्मा को बुरा मत कहो । काम को बुरा मत कहो । उसने सभी को दिया है तो इसका कोई जरूर महत्व पूर्ण प्रयोजन होगा ।

जब जीवन समस्त क्रियाओं में साक्षी भाव से गुजरता रहे, तब जो–जो जीवन में गलत है, वह अपने आप एक–एक कर के विसर्जित हो जाता है उनसे लड़ना नहीं पड़ता ।

संत, महात्मा उपदेश करते हैं कि यहां एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । अन्य मानना ही मृत्यु रूप बन्धन को प्राप्त करना है । दूसरी तरफ वे संसार को नरक एवं दुःखालय भी बताते हैं । जब सृष्टि का उपादान कारण ब्रह्म है तब उससे उत्पन्न जगत् को नरक रूप बताना तो परमात्मा की ही निन्दा करना है । सिद्धान्त तो यह है कि सब को ब्रह्म रूप जानो । संसार माया है इसमें तुम कामिनी कचंन से सदा दूर बचकर रहना । जब संसार असत्य, माया है तब उससे बचने का क्या अर्थ है ? जैसे कोई कहे कि बन्ध्या स्त्री के पुत्र से बच कर रहना वह बहुत खतरनाक डाकू है यह कहना जैसा व्यर्थ है, इसी प्रकार माया से (जो नहीं है) बचकर रहना वह बन्धन रूप है कहना व्यर्थ ही है ।

साधु, संत, महात्मा, गुरुओं एवं शास्त्र में काम की निंदा पढ़कर, सुनकर तुम काम वासना से मुक्त नहीं हो पाते हो । भोगते समय भी पाप की भावना मन में रखते हो । इसलिये पूरा भोग भी नहीं कर पाते हो ।

उस चेहरे की खोज करो जो तुम्हारा इस शरीर के जन्म के पहले था जो चेहरा देह की मृत्यु के बाद रहता है । जन्म–मृत्यु के मध्य वाला चेहरा तो पिता माता से प्राप्त हुआ है । यह तुम नहीं कि यह तुम्हारा नहीं ।

काम वासना के प्रति जागते रहो तो तुम साक्षी–भाव को प्राप्त कर सकोगे ।

परमात्मा ने समस्त संसार बनाया, शरीर बनाया, इन्द्रिय व मन, बुद्धि बनाया और गुरुलोग शास्त्र रचना कर संसार की, शरीर की,

इन्द्रियोंकी निंदा करते ही देखे जाते हैं । यह निंदा तो फिर बनाने वाले परमात्मा की ही कही जावेगी ।

वासना को दबाओ मत । जिस वासना से बुद्ध, जीसस, राम, कृष्ण, मीरा, महावीर पैदा हुए उसकी निन्दा करते हो । वासना के कारण ही यहां हम तुम आज है । फल को प्रेम से खाते हैं बीज की निंदा करना यह कहां की समझदारी है । वासना में प्रेम से उतरो । डरके, भय से, अशान्त अकड़े हुए उदासीन वृत्ति से मत उतरो । अन्यथा परिणाम सन्तान भी वैसी ही फलित होगी । जागकर जीओ । द्रष्टा साक्षी होकर जीओ । जीवन के साथ एकरस हो जाओ । परमात्मा नियन्ता है । तुम हो तो वह नहीं है । वह है तो तुम नहीं हो ।

स्वारथ का संसार

अपना प्रिय पुत्र, पत्नी, पिता माता की मृत्यु हो जाने पर प्रायः सभी अपने अपने स्वार्थ के नाते रुदन करते हैं । जिसका जितना स्वार्थ होता है उसी प्रमाण से वह दुःख मनाते हैं । कोई बेहोश हो जाता है, कोई सर पीटताहै, कोई छाती पीटते हैं, कोई चित्कार कर रोते हैं, कोई अश्रु प्रवाहित करता है, कोई अफसोस मनाते हैं । यदि सभी लोग उस लाश को घर में रखलें तो घर में दुर्गन्ध होगी । कालेरा बीमारी हो जावेगी एवं जीवित भी रोगी हो मर मिटेंगे । या घर छोड़ भाग जावेंगे । कितनाभी प्यारा सम्बन्धी, होने पर आखिर उसे जला देने का गाढ़ देने का ही निर्णय लेते हैं । उसी में घर व नगर की सुरक्षा है । यदि सब मुर्दे बचा लिये जाए मिश्र के पिरामिडों की तरह तो फिर जमीन जिन्दा आदमियों के रहने के लिये नहीं मिलेगी । यह भूल मत कर बैठना कि प्यारी माँ, पिता, बच्चे की लाश को घर में रख कर बैठ जाओ । वैज्ञानिक कहते हैं जहां तुम बैठे हो वहाँ दस–दस आदमियों की लाश गड़ी पड़ी है, कब्र बनी हुई है और तुम उस पर ग्यारहवें व्यक्ति बैठे हो । शिघ्र ही तुम्हारे ऊपर बारहवां व्यक्ति आकर बैठ जाएगा ।

मुर्दा लाशों से ज्यादा स्नेह मत लगाना । क्योंकि मुर्दे से ज्यादा प्रेम करोगे तो तुम भी मुर्दे हो जाओगे । हम वही हो जाते हैं

जिसमें हमारा प्रेम, आसक्ति, ममता होती है । मुर्दा लाशों के उपर श्रद्धा के दो पुष्प चढ़ाकर अपने दामन को बचाकर निकल जाना, कहीं उलझ मत जाना चाहे वह कितने ही प्यारे आदमी ही क्यों न हो ।

भीतर चलो दुर्घटना से बचना चाहते हो तो । जिसके पास ज्यादा काम–धाम नहीं है, वह गरीब अमीरों से भी अमीर है । बाहर जितने धन, पद, परिवार हैं, उनसे समय निकाल कर भीतर डूबो । जितनी तुम्हारे पास, साधारण जिन्दगी होगी उतनी ही सुविधा तुम्हें आत्मा की ओर जाने में होगी तुम उसका लाभ उठालेना । धन, पद, परिवार, प्रतिष्ठा आदि जितना ज्यादा होगा भीतर जाना मुश्किल होगा । **सुख सम्पत्ति घर आवेः, कष्ट मिटे तनका इस 'ओम जय जगदीश हरे'** की प्रार्थना में जीवन नष्ट न करना ।

पाया कहे सो बावरा

कहाँ जा रहे हो ? प्रार्थना करने हेतु कहीं बाहर दूर जाने की जरूरत नहीं । जहाँ झुक जाओ वहीं परमात्मा है वहीं से प्रार्थना हो सकती है । तुम्हारे चरणों के नीचे ही परमात्मा है । न मक्का-मदीना-काबा जाओ । न तीर्थ, मन्दिर जाओ । उसको खोजने कहाँ जाओगे ? कोई पता ठिकाना है ? केवल भटकना हाथ लगेगा । काशी, बोध, गया, सारनाथ, गिरनार जाने की जरूरत नहीं । खोजने के कारण ही उसके खोजाने का भ्रम दृढ़ हो रहा है ।

कहीं चलकर तुम्हें पहुँचना नहीं है, तुम चलने से पहले ही पहुँचे हुए हो । बस बाहर से आंख बंदकर भीतर अपनी ओर आंख खोलो । बैठ जाओ सब करना छोड़कर, करो मत ! देखो और पहुंच जाओ ।

यह महामंत्र है इसे अच्छे से समझलो । तुम वहीं हो जहां तुम्हें चलकर पहुचंना है । केवल तुम्हारा बोध खो गया है, होश खोगया है । परमात्मा कहीं खोया नहीं है, परमात्मा कहीं तुमसे दूर बाहर यात्रा पर या अपने घर गांव नहीं गया है जिसे तुम्हें कहीं ढूंढने जाना पड़े, प्रतिक्षा करना पड़े । तुमने साधन कर-कर के आज तक क्या पाया ? अब क्या और करके पालोगे ? जन्मों-जन्मों से यही सब तो करते चले आरहे थे । अब करना बंद करो और केवल द्रष्टा हो जाओ । भूख लगे तो देखो, ऐसा मत कहो कि मुझे भूख लगी । बल्कि ऐसा जानो कि परमात्मा ने भूख जगादी । भूख जगाई तो भोजन दे दें प्राणों को किन्तु मुझे भूख लगी और मैंने भोजन किया ऐसा मिथ्या

अभिमान मत करो । कर्ता न बनो । साक्षी रहो । सर्व कर्तापन से मुक्त हो जाओ । कर्तापन प्रकृति पर छोड़ दो । परमात्मा पर छोड़ दो ।

उसकी मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता । तुम अपने को बीच से हटालो । तुम कौन होते हो करने वाले? जो होता है उसकी इच्छा से । किसी ने तुमको मारा तो सोचा कि उसने ही कहा होगा तभी मुझे मारा । जो राग–द्वेष, अपना–पराया, पुण्य–पाप से पार हो गया वही मुक्त है । मुक्ति का अर्थ यह नहीं कि तुम मुक्त हो गये । मुक्ति का अर्थ तुम मिट गये, अहंकार शुन्य हो गये । तुम बचे तो मुक्ति कहां ? मुक्ति का अर्थ है तुम मिटे, तुम गये ।

ज्ञान को उछालते मत फिरो, कोई जिज्ञासा लेकर आये प्यासा तो उसे बताओं । बिना पूछे कभी किसी को मत कहो ।

हीरा वहां न खोलिये, जहां है खोटी हाट ।
कसकर बाधों गांठ में, उठकर चालो बाट ।

अहं ब्रह्मास्मि ! मैं ब्रह्म हूँ । अभी भी अहं व ब्रह्म का भेद बचा है । मैं कौन, ब्रह्म कौन? अभी दो बचे हैं । अभी तुम दो के बीच सम्बन्ध जोड़ने में लगे हो । मगर दो मिटे नहीं । लेकिन जिसे दूसरा दिखाई ही नहीं पड़ता है वह क्या सोचे, वह क्या कहे । वह किसका चिन्तन करे ?

जो बाहर से विशेषता दिखाता है शीर्षासन, आसन, प्राणायाम, वेश, उपवास, फलाहार, पत्राहार, पंचाग्नि, तपादि तो समझना चाहिये कि इनके भीतर का दीपक प्रकाशित नहीं हुआ है, भीतर अन्धेरा पड़ा हुआ है । इसीलिये जो भेद दीपक प्रकाश से, ज्ञान से दिखाई पड़ना था वह उसे नग्न रहकर, भूखे रहकर, कम सोकर दिखाना चाहता है । तुम देखते हो अपने साधु, महात्माओं को वह सब तरफ की कोशिश करते रहते हैं तुमसे विशिष्ट होने की । रात तीन बजे उठेंगे गांव वालों को भी उठाएंगे, जोर–जोर राम–राम करेंगे, रेकर्ड बजाएंगे, शंख फूंकेंगे, घंटा बजाएंगे ।

इसी प्रकार 'मैं शरीर नहीं' 'मैं आत्मा हूँ' इस बात को क्यों बार–बार कह रहे हो । 'शिवोऽहम्' 'शिवोऽहम्' है तो है फिर दोहराना क्यों । बार बार कहना तो इस बात को सिद्ध करता है कि अन्दर छिपा है देह भाव उसे झूठलाने भूलाने हेतु ऊपर मैं आत्मा हूँ का आवरण डाल रहे हैं ।

जो आजाये उसे करना, जो स्फूरण उठे उसे उठने देना । सहज भाव से जीना । जीने के लिये कोई पहले से योजना न बनाना । साक्षी पुरुष का पूरा जीवन वर्तमान में है । तुम जैसे हो यही प्रभु पूजा है । यही परिक्रमा है यही भोग, यही दंडवत – संत कबीर कहते हैं '**साधो सहज समाधि**' – बस तुम इतना ही करो कि प्रत्येक कर्म होश से हो – साक्षी भाव से करने लगो । जिसको पता चल जाता है कि मैं कौन हूँ वह तो अपने को कुछ नहीं मानता है, वह तो कहता है मैं अज्ञानी हूँ मैं कुछ नहीं जानता एवं जो कुछ नहीं जानता, अपने को नाना रंग–रोगन, तिलक, कंठी, माला, जटा रख लोगों को दिखाने में लगा रहता है । लेबिल चिपका रहा है यह बड़े होने की कुछ विशेष होने की बीमारी सभी क्षेत्रों में सभी को लगी है । लोग अपने अहंकार को सजाते ही रहते हैं । अहंकार को होश से देखो तो फिर साक्षी में उतर आओगे, अहंकार क्षीण हो जावेगा ।

सुख का इतना ही अर्थ है कि तुम अन्दर आत्मा से जुड़ गये । भीतर से सम्बन्ध जुड़ गया । किस बहाने जुड़ना है यह बात महत्वपूर्ण नहीं है । भीतर से जब भी सम्बन्ध जुड़ जाता है तब सुख मिलता है । और भीतर से सम्बन्ध टुटते ही दुःख मिलता है ।

ध्यान, समाधि औषध है विक्षेप एक बीमारी है । बीमारी नहीं तो औषध की आवश्यकता नहीं ।

मेरे लिये यह कर्तव्य है यदि आपका ऐसा सोचना है तो आप अभी संसार में ही है । जिस दिन ऐसा तुम्हें लगे कि मेरा कोई कर्तव्य नहीं । जिसने सबको रचा है उसी के लिये कर्तव्य होगा । मैं तो अभिनय कर रहा हूँ जो पार्ट मुझे दिया है अदा कर देता हूँ । जिस

दिन तुम कर्ता न होकर अभिनेता होकर जीने लगे, बस उसी दिन साक्षी प्रकट हो गया । गृह पालन का नाम संसार नहीं । मेरा कर्तव्य है यह मिथ्या अहंकार करना ही संसार बन्धन है ।

जब ऐसा लगे कि जैसा है वैसा ही शुभ है, जैसा होना था वैसा ही हुआ है । जैसा है, जैसा होना था वैसा ही हुआ है । जैसा है, जो है उसके साथ तुम पूर्ण स्वीकारता ले आओ, उसे स्वीकार करलो तो ही परमात्मा में समर्पण हुआ जानना तुम्हारा संसार समाप्त हुआ, तुम जीवन्मुक्त हुए । परमात्मा जैसी तेरी इच्छा हमें फुल व कांटे दोनों पसन्द है जो भी तू देना चाहेगा वही हमारे लिये शुभ है । हमारे किये आज तक कुछ नहीं हुआ, बहुत कर करके जन्मों जन्मों से देख लिया । तू जो कराना चाहता है वही शुभ है ।

जो ज्ञान के संग्रह करने में ही लगा है किन्तु उस मैं रूप में, आत्मा रूप में जो स्वीकार नहीं करता है तो वह संग्रहित ज्ञान उसके अहंकार का ज्ञान ही भोजन है । वह ज्ञान से वंचित् रह जाता है । ज्ञान भीतर से प्रकट होता है । जो बाहर से लिया जाता है वह ज्ञान नहीं – उधार, कूड़ा–कर्कट, कचरा है । बाहर से सुन पढ़कर संग्रह करते रहोगे अज्ञानी ही रहोगे ।

सच्चे सद्‌गुरु, संत, महात्मा वही है जो तुम्हे साक्षी रहने की प्रेरणा देते हैं । सत्कर्म करने की प्रेरणा सब देते हैं किन्तु सत्कर्म करने में पाप कर्म भी अवश्य होता रहेगा । बिना पाप कर्म के मन्दिर बनाने जैसा सत कर्म भी नहीं हो सकेगा । वास्तविक संत तो तुम से यह कहता ही नहीं कि यह करो, यह न करो । वह तो यही कहता है कि तुम अपने को जानलो कि तुम कौन हो । तुम केवल साक्षी हो जाओ । फिर जो होगा वही ठीक होगा । और अपने को न जानने के पहले जो भी होगा वह गलत ही होगा । साक्षी भाव में जागने से सब समस्याओं का समाधान हो जाता है । बिना जागे किसी समस्या का समाधान नहीं होता ।

किसी से सुनकर मान लिया वह ज्ञान कहलाता है । स्वयं के अनुभव से जो आया है वह विज्ञान कहलाता है । साइन्स को विज्ञान कहते हैं क्योंकि साइन्स प्रयोगात्मक, अनुभव सिद्ध है । इसीलिये सुना हुआ ज्ञान है एवं जाना हुआ विज्ञान है ।

जब तुम कहते हो यह मैं हूँ तो एक छोटा–सा घेरा बना लेते हो । क्यों तुम केवल मनुष्य से अपने को जोड़ते हो । क्यों नहीं कहते हो मैं जीवन हूँ । इसमें तो मनुष्य ही क्या पशु–पक्षी, पेड़–पौधे सभी सम्मिलित हो जाएंगे । फिर ऐसा क्यों नहीं कहते कि 'मैं ब्रह्म हूँ' मैं सबका आधार हूँ अस्तित्व हूँ । सब कुछ जो कुछ है, उनके साथ एक हूँ ।

यदि कोई पूछे कि परमात्मा को आपने पा लिया है ? तो उसे यही कहना चाहिये ! कौन पाये, किसको पाये, कहाँ से पाये ? सब वही है । उसके सिवा यहां न कोई पाने वाला है, न कुछ पाया जाने वाला है। यहां तो वेद की एकमात्र यही घोषणा है कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'नेह नानास्ति किंचन' यहाँ एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है ।

तुम बाहर भटक रहे हो । तुम कहां खोज रहे हो । किससे मांगने जा रहे हो जो तुम्हारे भितर की सम्पदा है । किसी और से नहीं मिलेगी । जन्मो–जन्मो से अनेक द्वार पर भीख मांगी किन्तु अपना भिक्षा पात्र तो देखो, ज्यों का त्यों खाली का खाली ।

सभी लोगों को ऐसी भ्रान्ति है कि बाहर सब जगह अमृत बरस रहा है । भागे चले जा रहे हैं दूर–दूर पर्वत तीर्थों में । लेकिन यह तो देखो जो लोग सारे जीवन वहीं रहते हैं क्या उन तीर्थों का उनके जीवन में भी कुछ अमृत बरसा ? फीर तुमसे ही परमात्मा क्यों दुशमनी करके बैठा है जो सब पर अमृत बर्षा कर रहा है, और तुम्हें पानी भी नहीं मरुस्थल में पटक रखा है । अगर आंख नहीं खुली है तो कहीं नहीं बरस रहा है एवं आंख खुल गई है तो सब के भीतर सबके चारों तरफ वह बरस रहा है ।

कबीर भूखा कोई नहीं, सबकी गठरी लाल ।
गांठ खोल देखे नहीं, ताते भयो कंगाल ।।

जो देह के भीतर अपने को आत्म रूप से खोज लेता है वह कभी नहीं मरता । यह ज्ञानमार्ग है । देह के भीतर जिसे पा लिया उसे परमात्मा कहते हैं । अपने से बाहर जिसे पा लिया उसे भगवान कहते हैं । बाहर भी उसे खोज लिया जो मिटता नहीं तो उसे भक्ति मार्ग कहते हैं । तुम्हें जो अच्छा लगे दोनों रास्ते खुले हैं मन्जिल दोनों की एक है ।

सत्य की महिमा है सुन लिया तो हो गया । तुम्हारे कृत्य पर सत्य निर्भर नहीं है । सत्य तो तुम्हारे श्वाँस–श्वाँस में, दिल की धड़कन में, रक्त की बूंद बूंद में समाया है । केवल स्मरण करना है । श्रवण मात्र से उपलब्धता का बोध जग सकता है । यदि सम्यक् श्रवण हो गया तो वह परमात्मा पास से भी पास जो तुम्हारे भीतर है जो तुम स्वयं हो उसे कहीं खोजना नहीं ।

हमें अन–अभ्यास सीखना होगा । अभ्यास मन करता है । मन की साधना मन के ऊपर, मन के पार नहीं लेजा सकेगी । हम मन की चंचलता को शान्त करना चाहते हैं और शान्त होने की साधना भी मन से कराते हैं तो मन शान्त होने की अपेक्षा अधिक चंचल ही होगा ।

मन ने अब तक जो भी अभ्यास किये हैं उन्हें अब छोड़देना होगा । इसलिए मैं कहता हूँ आप अभ्यास से कभी ऊपर नहीं जा सकेंगे । मन सभी अभ्यास छोड़ दें एवं शान्त हो जाए । यह अभ्यास नहीं कहलाएगा । क्योंकि यह तो हमारा स्वभाव है । मुठ्ठी बांधना अभ्यास कहलाएगा किन्तु मुठठी खोलना अभ्यास नहीं है । कोशिश करके लाये हुए परिवर्तन का कोई मूल्य नहीं है । अभ्यास से लाया गया वैराग्य झूठा है । ज्ञान से आया परिवर्तन स्थायी है ।

प्रेम दासता नहीं

संसार में जिसे तुम प्रेम कहते हो वह तो हिंसा है । उसके चारों तरफ दीवाले खड़ी कर देते हो, सींखचे खड़े कर देते हो । एक तरह से उसे पींजड़े में बंद कर दिया उसके पंख ही काट दिये, अब उसकी कोई स्वतन्त्रता शेष नहीं रही । तुमने उसे अपना गुलाम बना लिया । स्त्री को दासी कहा जाता है वे भी अपने को दासी मानती है, तुम उसके मालिक बन जाते हो । वह प्रेम नहीं अहंकार है 'मेरा' 'तेरा' है । एक दूसरे की गर्दन को फांस लेते हो । तुम्हारा, प्रेम तो अपनी पत्नी के लिये फांसी है जो बंध गयी तुमसे, फंस गई तुमसे अब वह सारे जीवन पछताती रहेगी क्योंकि सात चक्कर जो उसने तुम्हारे साथ लगा लिये ।

तुम स्त्री को प्रेम करते होते तो उसे स्वतन्त्रता देते, न कि बांधते । तुम इस मुक्त आकाश में उड़ने की स्वतन्त्रता उसे देते न कि इसे पींजड़े में बन्द करते । यह तुम्हारा प्रेम बड़ा खतरनाक है । यदि वह किसी व्यक्ति की तरफ देखकर मुस्करा भी दे, तो परस्पर के प्रेम में जहर फैल जाता है । तुम उसकी गर्दन, नाक, कान काट डालने, मार डालने को तैयार हो जाओगे ।

तुम कहते हो कि मैं चाहता हूँ तुम जैसे भी रहना चाहो खुश रहो । यह कैसी खुशी जो तुम उसे अपनी मरजी से किसी सुन्दर प्रकृति के खिले पुष्पों को, पुरुष को देखने में जान लेने को तैयार हो

जाते हो । यदि यह किसी को देखकर मुस्कराती थी या उसके पास बैठ आनन्दित होती थी, तो तुम्हें प्रसन्न होना था अगर सचमुच में तुम उसे प्रेम करते थे एवं उसे खुश देखना चाहते हो तो उसकी खुशी में खुद को भी प्रसन्न होना चाहिये था । लेकिन नहीं तुम केवल ऊपर से कहते थे कि मैं खुश देखना चाहता हूँ । वास्तव में तो तुम उससे अपनी ही खुशी केवल चाहते हो उसकी खुशी की हत्या करके । यह प्रेम नहीं बकवास है । तुम्हारे प्रेम में जो पड़ता है वह मरता है, पछताता है और कुछ नहीं मिलता ।

जिससे तुम्हें प्रेम होगा उसके प्रति तुम्हारे मन में दया होगी, करुणा होगी, सहयोग होगा, सहारा देना चाहोगे । वह कहीं जाना चाहे तो उसकी मदद करोगे, उसे मार्ग से च्युत नहीं करोगे, वह जैसा होना चाहे, करना चाहे उसमें सहभागी बनोगे रुकावट नहीं करोगे। तुम उसका कारागृह न बनोगे। यदि वह तुम्हारे विपरीत भी जाए अगर यही उसकी नियति है तो भले विपरीत जाए ।

उपनिषद कहती है पति को पत्नी, पत्नी को पति, पिता को पुत्र पुत्र को पिता कोई किसी को सुख नहीं पहुंचाना चाहते हैं, सब सबसे अपाना ही सुख चाहते हैं । तब यह भी सिद्ध हो गया कि पुण्य भी भ्रान्ति है। पुण्य की भ्रान्ति तभी होती है जब हम किसी को सुख पहुंचाते हैं । जब हम किसी को सुख ही नहीं पहुंचाते हैं तो पुण्य पाने की भ्रान्ति हैं । और जब हम किसी को सुख नहीं पहुंचाते हैं तो दुःख भी नहीं पहुंचा सकते । जब दुःख नहीं दे रहे हैं तो फिर पाप भी भ्रान्ति है । क्योंकि दूसरे को दुःख देना ही पाप माना जाता है ।

जिस व्यक्ति के संस्पर्श में तुम्हारे अन्दर प्रेम जग जाए तो जानना कि यह ज्ञान को उपलब्ध हो चुका है । बुद्धत्व घट चुका है । फिर उस प्रेम को तुम भी अकेले सम्हाल न सको, तुम औरों को लुटाने लग जाओ तो समझना बुद्धत्व की महाक्रान्ति घटित हुई है । बुद्धत्व का महासूर्य उसके जीवन में उदय हुआ है ।

जब तक तुम्हें प्रेम के लिये दूसरे की आवश्यकता रहे वह निकृष्ट प्रेम है । प्रेम बांटने के पहले प्रेम पैदा करना होगा । तभी किसी को प्रेम बांट सकोगे । अकेले में बैठ जब प्रेम पूर्ण आनन्दित हो जाओगे तब तुम्हारे पास जो भी आयेगा वह भी प्रेम पूर्ण विद्युत् तरंगो से भर जावेगा ।

यदि तुम अकेले प्रसन्न नहीं हो तो दूसरे को कैसे प्रेम बांट सकोगे ? यदि तुम अकेले उदासी से, दुःख से, चिन्ता से, भय से, क्रोध से बीमारियों, परेशानियों, अप्रसन्नता, तनाव, चिन्ता, गरीबी, दुःख से भरे हुए हो तो फिर यही तुम दूसरे के पास जाते ही या पास आते ही उढेलनें लग जाओगे । इसके अलावा तुम दूसरे को ज्यादा क्या देते हो ?

अगर तुम प्रेम करते हो तो पत्नी को तो मुक्ति दो, बांधो मत । अगर पत्नी चाहती है कि पति प्रसन्न हो, आनन्दित हो, तो उसे बाधों मत मुक्त करो । जेलर बन घरको जेल मत बनाओ। प्रायः लोग घर को जेलखाना बनाए हुए है । सब कारावास में घुट–घुट कर जी रहे हैं ।

जैसे जैसे परस्पर स्नेह बढ़ता है उतनी ही परस्पर स्वतन्त्रता बढ़ती जाती है । प्रेम जिसे तुम करोगे उसके जीवन में तुम परतन्त्रता की रेखा नहीं खींचते, उसके पैर में जंजीर न बांधना चाहोगे । जहां अपने प्रेमी के जीवन में आपने कोई नियम सीमा आरुढ़ कर दी वहां प्रेम नहीं उसके जीवन का वह तो शोषण ही होगा । माँ का प्रेम बच्चे के प्रति सहज होता है । मां बच्चे को उसकी पूर्ण अशुचि अवस्था में स्वीकार कर लेती है । मां बच्चे को यह नहीं कहती कि तुम शुद्ध होकर आओगे तब गोद में उठाउंगी । जैसा जैसा प्रेम तुम्हारा परस्पर बढ़ता है तुम अपने प्रेमी को उसी अवस्था में स्वीकार करलेते हो । तुम उसे बदलना बंद कर देते हो ।

जिसके प्रति प्रेम होता है उसकी कमी, बुराइयों पर आपका ध्यान कभी नहीं जाता है । जिसके प्रति तुम्हारे मन में प्रेम नहीं

उसकी अनेक अच्छाई होने पर भी एक बुराई पर ही तुम्हारी दृष्टि जाती रहती है ।

सच्चा प्रेम तो स्वतन्त्रता के बाद ही जाग्रत होता है । परतन्त्रता में कहां प्रेम है ? वहां तो शोषण चलता है वहां तो उसे गुलामी, दासता दी जाती है । वहां तो प्रेम के नाम व्यापार ही चलता रहता कि तुम्हारे लिये मैंने यह यह किया किन्तु तुमने मेरे लिये आज तक क्या किया ?

स्वतन्त्रता के बाधा पड़ने पर हम उस कहे जाने वाले प्रेमीको भी छोड़ देते हैं जिसे 'त्याग' या डायवर्स के नाम से कहा जाता है । किन्तु स्वतन्त्रता को खोकर कोई भी प्रेम नहीं चाहता बल्कि वह प्रेम नहीं जंजीर ही है, बन्धन ही है । स्वतन्त्रता के लिये हम हर प्रकार की बली देते आये हैं ।

तुम अपने प्रेमी को या प्रेमिका को स्वतन्त्रता देते नहीं वह कोई देने–लेने की वस्तु भी नहीं । प्रेम का मतलब ही स्वतन्त्रता जहां कोई बन्धन नहीं ।

साधन लक्ष नहीं

रोग है तब तक औषधि ग्रहण करना रोगी के लिये कर्तव्य रूप है । स्वास्थ्य अनुभूती होने पर औषधि व्यर्थ हो जाती है । स्वास्थ्य लाभ होने के बाद औषधि लेते रहना पुनः रोग उत्पत्ति कारक होता है । जो साधन मंजिल पर पहुंचता है वही साधन, वही मार्ग न छोड़ने पर मंजिल से दूर ले जाता है । जो नौका नदी के इस तट से उस तट पर पहुंचा देती है वही नौका नदी में बाढ आने पर न उतरने से डुबा भी देती है ।

श्रीकृष्णजी अर्जुन को धर्म का उपदेश करते हैं एवं धर्म में आरूढ़ होने पर उसे समस्त धर्म का परित्याग कर देने का भी उपदेश करते हैं । किन्तु अज्ञानी लोगों की ऐसी धारणा होती है किजिस साधन बल से हम यहां तक पहुंचे हैं उस साधन को कैसे छोड़दें ? क्या पता अभी तक जो कुछ पाया वह सब छूट जावे एवं हमारी दुर्गति हो जावे ।

मार्ग की जरूरत है मन्जिल दूर होने तक, मंजिल पर पहुंच जाएं तो जो चलना मन्जिल के पास पहुंचा देता है वही चलते रहना मंजिल से दूर भी करता जाएगा ।

चित्त में चंचलता है अशान्ति है तो तुम ध्यान करते रहो जब अशान्ति मिट जावे शान्ति प्रकट हो जाये फिर ध्यान रूप औषधि को पकड़ कर मत बैठ जाना, नहीं तो ध्यान ही अशान्ति पैदा करने का कारण बन जाएगा । अतः ध्यान को भी बिदा कर देना चाहिये ।

साधन का उपयोग करना है, लक्ष्य प्राप्त करने के लिये, लक्ष प्राप्त होने पर साधन को भी छोड़ ही देना चाहिये । साधन हमारा मालिक न बन जाए । साधन की गुलामी नहीं करना है । राह मंजिल नहीं है । चलना राह पर कर्तव्य है । घर में पहुंच जाने पर चलना अशान्ति का ही कारण है । ध्यान, साधना, नियम जब तक न छूटे तब तक तुम्हारी अवस्था कच्ची ही है ।

साधन पैर में चुभे कांटे को निकालनेवाले बाहरी बड़े कांटे की तरह है । कंाटा निकल जाने पर दोनों कांटे निकाल फैंकना है । अंधेरे हेतु दीपक की जरूरत है । प्रकाश होते ही दीपक बुझा देते हैं । भोजन पकते ही अग्नि से दूर कर देते हैं । जब साध्य मिल जाये तब तुम सिद्ध हो गये फिर साधन करने की आवश्यकता क्या ? साधन भी छूट जाएगा । साधन से मोह मत कर बैठना ।

साधन से आसक्ति मत कर लेना, अन्यथा मूर्ति पूजा, ध्यान फिर छोड़ना मुश्किल हो जाएगा । प्रार्थना का अभ्यास कर लिया तो प्रार्थना छोड़ना मुश्किल हो जाएगा । जप का अभ्यास कर लिया तो जप छोड़ना कठिन हो जाएगा । यह सब मूर्ति, माला, जप, पूजा औषधि की पोटली को सिर पर रख कर सदा चलना नहीं है । चिकित्सक की जरूरत रोगी को, अवतारों की जरूरत अधार्मिक, पापी के लिये । इन अवतारों को तुम मुकुट मणि मत बना रखना । यह तो इस देश का सौभाग्य नहीं, दुर्भाग्य है जो इतने चिकित्सक, इतने अवतार, इतने तीर्थंकर, इतने महापुरुष अवतरित हुए । बीमारों की हालत बहुत बुरी है । इसी कारण १० अवतार, २४ तीर्थंकर, पैगाम्बरादि हुए ।

चाक को चलते रहने देना तुम चाक से तादात्य मत करना, तुम चाक को थामें हुए कील से अपना तादात्म्य करलो । तब तुम संसार में संसारियों की तरह अवश्य प्रतीत होंगे किन्तु तुम में संसार नहीं होगा । व्यवहार प्रारब्ध से चल रहा है उसे चलने दो । तुम तब

तक चंचल रहोगे जब तक तुमने अपने को चाक रूप देह मान रखा है । जब तक तुम बाजार से, बाहर से किसी वस्तु को खरीदना, पाना चाहोगे तब तक तुम चंचल बने रहोगे । साक्षी कील सदा अचल है ।

धर्म स्मरण की कला है । धर्म पाने की कला नहीं है । याद की कला है । जो मिला ही है उसे पाने के लिए क्या करना पड़ेगा । जो खोया कभी भी नहीं है उसका विस्मरण हुआ है, सुध भूल गई है, सुरति खो गई है । तुम नहीं खो गये हो, सिर्फ याद खो गई है ।

हम दूसरे के जूते पहनने में, दूसरे के कपड़े पहनने में, दूसरों का झूठा खाना खाने में अपनी तौहीन, बेइज्ज़ती समझते हैं, किन्तु हम दूसरों के शास्त्र सिद्धान्त को ग्रहण कर अपने सिद्धान्त, अपना अनुभव मान लेते हैं । सत्य की गरिमा हमारे मन में नहीं है । कपड़े, जूते, भोजन के प्रति हमारे मन में गरिमा है कि वह मेरा ही हो अन्य का उपयोग किया न हो । सत्य माना नहीं जाता है । सत्य को स्वयं रूप में जानना होगा । मानना किसी का, आपका जानना नहीं है । आपको खोजना होगा, जानना होगा । सतगुरु इशारा दे सकते हैं चलना तुम्हारे पैरों से होगा । मानकर बैठ मत जाना, उनके इशारे मन्जिल की ओर तो हैं किन्तु मन्जिल नहीं है । ध्रुव तारे को अंगुली के इशारे से बताया जाता है किन्तु अंगुली ध्रुव तारा नहीं है । पर श्रद्धा से हट कर आत्म श्रद्धा होना चाहिये ।

तुम से कोई पूछे, तुम कौन हो ? तो तुम कहते हो, मैं इंजीनियर हूँ, डाक्टर हूँ, चित्रकार हूँ, कलाकार हूँ, धोबी हूँ, नाई हूँ, हलवाई हूँ, चमार हूँ, टेलर हूँ, वकील हूँ, कलेक्टर हूँ, सरपंच हूँ, आइ ए एस आफीसर हूँ, मैनेजर हूँ, सेक्रेट्री हूँ, डायरेक्टर हूँ, मास्टर हूँ । इस का मतलब तुम यह–यह काम करते हो । अगर तुमसे कोई कहे कि तुम यह सब अपने काम धाम की बात छोड़ बताओ कि तुम कौन हो ? तुम्हारा इन उपाधियों से कुछ मतलब नहीं ।

तो वह आदमी भी थोड़ा चकित हो जाएगा, कि फिर तो अपना परिचय देने का कोई उपाय ही नहीं । क्योंकि मैं का होना कृत्य का जोड़ है । मैं साधु हूँ, मैं दानी हूँ, मैं भिखारी हूँ, मैं बूढ़ा हँ, मैं जवान हूँ, मैं विवाहित हूँ, मैं विधवा हूँ यह सब कृत्य का जोड़ है । मैं उपवासी हूँ, मैं मौनी हूँ, जहाँ तक मैं किसी कृत्य से जुड़ा है, वहां तक संसार है । यदि पूछने वाले को तुमने कह दिया कि मैं इन उपाधियों के बिना तो केवल मनुष्य हूँ । मनुष्य भी तो तुम्हारे शरीर का परिचय है । तो फिर मनुष्य होने के पहले तुम क्या हो ? उत्तर यही होगा कि मैं एक चैतन्यात्मा हूँ । मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ जो इन सभी नाम, रूप उपाधियों के पहले इनका द्रष्टा है ।

खोज के कारण ही खोये बैठे थे । खोज के लिये दौड़ते थे । जो भीतर था उस ओर देखना ही भूल चुके थे । दौड़ के कारण दूर तो देखते थे, किन्तु तुम्हें पास का दिखाई नहीं पड़ता था ।

जो जिसका स्वभाव है उसे पाने हेतु कोई अभ्यास नहीं करता । अभ्यास वहां करना पड़ता है जो हमारे पास नहीं है अथवा जो हम नहीं है । अभ्यास द्वारा निज स्वभाव आत्मा को नहीं पाया जा सकता । अभ्यास का तो अर्थ ही है कि अभि कुछ करना शेष है। बिल्ली बाघनी बनने हेतु ध्यान, प्राणायाम, समाधि, शिर्षासनादि साधनों में से क्या करें ? कोयल बनने हेतु कौवा क्या अभ्यास करे ? अभ्यास तो ऊपर से कुछ ओढ़ने का प्रयत्न है । जो है वह तो है । गुलाब पुष्प अभ्यास तो नहीं करता गुलाब होने के लिये । कोयल कोयल है, कौवा कौवा है । चमेली, चम्पा, चमेली, चम्पा होने के लिये अभ्यास तो नहीं करते ।

वह जो तत्त्वतः तुम द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हो, यदि वह प्राणों में बैठ जाय, उसका दृढ़ निश्चय मात्र हो जाय तो होगई क्रान्ति होगया मोक्ष । कुछ करना नहीं है पाना नहीं है पाया हुआ ही है, खोजना नहीं केवल पहचानाना मात्र है । कहीं जाना नहीं, जहाँ भी गये हो घर लौट

आना है । स्वप्न में घर छोड़ दिल्ली, बाम्बे चले जाने का दृश्य देखते हो वहां गये नहीं अब लौटना है तो क्या करे केवल जागना है तुम घर में ही हो ।

मुझे यदि एकाग्रता से सुन लिया तो फिर न ध्यान करना है, न जप करना है, न तप करना है फिर कुछ भी करना नहीं है । इसी क्षण घटना घट सकती है यदि तुम शान्त एकाग्र एवं श्रद्धा तथा होंश पूर्वक सुन लेते हो तो इसी क्षण तुम मुक्त ब्रह्म ही हो । अभ्यास का अर्थ है भीतर कुछ बाहर कुछ । जैसे सिनेमा नाटक के लोग महिनों अभ्यास कर अपने अभिनय को स्टेज पर दिखाते हैं ।

किया हुआ कोई साधन अखण्ड नहीं हो सकता तुम्हारा प्रारम्भ करना ही खण्डता से प्रारम्भ होता है । किसी अन्य का अखण्ड चिन्तन भजन हो नहीं सकता । तुम जो करोगे वह अखण्ड नहीं हो सकेगा ।

जो मनुष्य बाहर देख रहे हैं वह दृश्य में उलझे हुए हैं । वे राम, कृष्ण, देवी–देवा की पूजा करें किन्तु अधार्मिक ही है । चाहे वे आकाश में परमात्मा की धारणा कर आनन्द विभोर हो रहे हो या मूर्ति सम्मुख रख उस मूर्ति में मोहित हो रहे हैं । तो भी दृश्य में ही उलझे हैं । परमात्मा भी उनके लिये दृश्य मात्र है ।

दूसरे तरह के वे मनुष्य है जो द्रष्टा की खोज करते हैं । मैं तुम्हें देख रहा हूँ तुम दृश्य हो । जो मेरे भीतर से तुम्हें देख रहा है, वह द्रष्टा है । तुम मुझे देख रहे हो, मैं तुम्हारे लिये दृश्य हूँ । जो तुम्हारे भीतर छिपा मुझे देख रहा है, आंख की खिड़की से जो मुझे सुन रहा है, कान के द्वार से **वह कौन है** ? उसकी तलाश में जो चल पड़ा है वह धार्मिक है ।

परमात्मा को दृश्य की भांति सोचा तो तुम मन्दिर, तीर्थ, मूर्ति, चित्र बनाओगे । पूजा, प्रार्थना, जप, ध्यान करोगे, लेकिन वास्तविक धर्म से तुम्हारा सम्बन्ध न हो पायेगा । वास्तविक धर्म की

शुरुआत ही तब होती है जब तुम द्रष्टा की खोज में निकल पड़े । तुम पूछने लगे कि मैं कौन हूँ । यह जानने वाला कौन है । जानना है हमें तो इस देह में सब के जानने वाले को जानो । देखना है तो सब देखने वाले को देखो ।

कुछ करना नहीं है सिर्फ देखने की दृष्टि को बाहर से भीतर की ओर करना है । तुम अमृत हो, अनंत बार शरीर धारण किया व छोड़ा परन्तु तुम कभी मिटे नहीं तुम्हारा स्वभाव ही अव्यय, अमृत,अखण्ड है ।

जो हठ पूर्वक चित्त को रोकता है उस अज्ञानी को कहां चित्त का निरोध है ।

बाहर किसी की शरण मत लेना अन्यथा बन्ध जाओगे अशरण हो जाओ तो तत्काल आत्म समर्पण हो जाएगा ।

चलो, देखो, सुनों, खाओ, पीयो, सोओ रहो संसार में भागो नहीं । जागो, होंश में रहो । साक्षी रहो । द्रष्टा रहो ।

क्षण–क्षण जीयो निराग्रह से जीयो न निश्चय करो कि शुभ करेंगे, न अशुभ करेंगे । जो परमात्मा करवाले उसे करलेंगे । तुम कर्ता न बनो तुम कहदो मैं निमित्त मात्र हूँ ।

यदि उगते हुए सूरज को ; किसी गुलाब के फूल को देख तुमने सर झुका दिया, घुटने टेक दिये तो हो गई परमात्मा की पूजा, हो गई नमाज किन्तु तुम ऐसा नहीं कर पाते, जीवित परमात्मा को देख झुक नहीं पाते, हाथ जुड़ नहीं पाते एवं मुर्दा पत्थर मूर्ति, मुर्दा काबा पत्थर को हाथ जोड़ रहे हो, जड़ मूर्ति पर फूल चढ़ा रहे हो । मुर्दा मूर्तियों, चित्रों के साथ खेल कर रहे हो । राम नाम रट रहे हो, गायत्री को दोहरा रहे हो । छोड़दो इन बाह्य आडम्बरों को और डूब जाओ खिले हुए पुष्पों के सौन्दर्य में जिसमें परमात्मा ने अपने अदृश्य हाथों से सुन्दर रंग, एवं मधुर सुगन्ध को डाला है । उस पौधे में परमात्मा ने अपने जल रूपी प्राणों को भरा है ।

परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठा है । तुम किसकी पूजा, पाठ, मंत्र जाप ध्यानादि कर रहे हो । तुम जिसकी पूजा कर रहे हो, प्रार्थना कर रहे हो वह पूजा प्रार्थना से पहले ही तुम्हारे भीतर विराजमान है । तुम कहां खोज रहे हो काबा कैलाश में ?

जब एक विचार समाप्त हो जाये एवं दूसरा विचार उदय न हो उस समय बीच की खाली जगह आ जाये तो उस खाली जगह में तुम अपना दर्शन कर सकोगे । इन दोनों के मध्य में तुम्हारे अस्तित्व का खालीपन होता है जो तुम्हारा शुद्ध निराकार रूप है वह प्रकट होगा ।

कोई साधक दूसरे की तरफ, बाहर की ओर, भीड़ की ओर तभी तक भागता है जब तक उसने अपना रस नहीं चखा । जो ज्ञान को उपलब्ध होगया, साक्षी को उपलब्ध होगया, तुरीय में स्थित हो गया अब उसके लिये बाहर कोई रस नहीं रहा अब उसे सब नीरस मालूम पड़ता है ।

श्रवण मात्र से सत्य उपलब्ध हो सकता है किसी को हाथ पकड़कर कहीं जाने की किसी को बीच में लेने, की जरूरत नहीं । जनक ने एक बार अष्टावक्र को पूरा सुनलिया वह मोक्ष को उपलब्ध हो गये । न राज्य त्यागा न पत्नी त्यागी, न योग किया, न कर्म किया, न भक्ति की, न जप किया न तप किया, न मंत्रमाला की । क्योंकि वह भिन्न नहीं है । सत्य तुम में है, तुम हो । केवल उस ओर जागना है पाना नहीं है पाया हुआ ही है । दो पहर की तेज रोशनी एवं धूप में तपते हुए कोई पूछे कि सूर्य होने का क्या प्रमाण है, रोशनी कहाँ खोजे ? तो ऐसे व्यक्ति को पागल ही कहा जावेगा ।

श्रद्धा अनुभव की सुगन्ध है । अनुभव बिना श्रद्धा अन्धी है और जिस श्रद्धा के पास आंख न हो, उस अन्धता से सत्य तक नहीं पहुंच सकोगे । झुठ से जब मुक्त हुए, अंध विश्वास से जब मुक्त हुए तब जो शेष रह जाता है वही सत्य है । गयी बीमारी, जो बचा वही स्वस्थ्य है ।

सत्य को पाने हेतु स्वयं को खोना होगा, स्वयं को मिटाना होगा, स्वयं की, अहंकार की बलि चढ़ाये बिना कोई ज्ञान को, सत्य को, आत्मा को उपलब्ध नहीं हो सकता ।

कल्याण के साधन चित्र, मूर्ति तो इस प्रकार है जैसे घर में अन्धेरे को मिटाने के लिये दीपक का चित्र बनादो, या दीपक शब्द बोलते रहो, ज्योति–ज्योति बोलते रहो । तुम अगर अपने प्रेमी की तस्वीर लिए बैठे रहो, तस्वीर को देखने से क्या कोई तृप्ति मिलेगी । पानी–पानी रटते रहो क्या प्यास मिट सकेगी ?

जब तक तुम्हारी आत्मा से पहचान न हो जावे तब तक यह मानना कि 'आत्मा है' यह व्यर्थ है । अभी तो हम अपने को भीतर से मिट्टी का शरीर ही मानते हैं, नाम, जाति, सम्बन्ध, रूपवाला किन्तु ऐसा मानना व्यर्थ बकवास है ।

तुम्हें खोजना पड़ेगा । आत्मा तुम तभी हो सकोगे जब तुमने खोज लिया है । खजाना दबा पड़ा रहे करोड़ों का और तुम उसी पर बैठे भीख मांगो क्या उपयोगिता । खोजो । आत्मा खोज से मिलती है ।

तुम बुद्ध पुरुषों की वाणी सुनकर भी भूलगये, महावीरों से सुनकर भी भूलगये, कृष्ण को सुनकर भी चूकगये। आज तक तुम सबके पास बैठे सोते ही रहे, उल्टा पात्रकर बैठे रहे ऐसे ही तुम मेरे पास आकर बैठ गये हो । तुम कोई नये पहली बार मुझे ही नहीं सुन रहे हो अनादि से अनन्त महापुरुषों को सुनते आ रहे हो । तुम अपने को जगाकर सुनो । जैसा परिक्षित राजा ने शुकदेव को, अर्जुन ने कृष्ण को एक बार सुना एवं अपने को पा लिया ।

होंश रखने का मतलब है तुम जागे रहो । तुम्हारे सम्मुख जो भी हो रहा है तुम देखते रहो । तुम्हारे बिना जाने कुछ न हो पावे । जो जागे हुए जीता है उसके जीवन में पाप गिर जाता है । सोये सोए जीना याने पाप में जीना । पुण्य का अर्थ है जागे–जागे जीना ।

असत्य को असत्य जान लेना । असार को असार जान लेना बस सत्य का द्वार खुलने का समय आगया । सार को जानने की भूमि कम्प पैदा हो गई । जो नहीं है उसे जान लेना कि वह नहीं है, तो फिर जो है उसके लिये तुम्हारे द्वार खुल गये ।

अगर तुम्हारी जानकारी सिर्फ जानकारी है, तो वह सम्यक् दृष्टि नहीं है वह मिथ्या दृष्टि है । अगर तुम्हारी जानकारी अनुभव में उतर चुकी है तुम जान चुके हो, तुमने स्वाद लिया है, तो आंखे साफ हो गई, तो ही सम्यक् दृष्टि है । अन्यथा तुम्हारी दृष्टि पर तो दूसरों के विचार के पर्दे पड़े हैं जिन्होंने स्वयं जानकर तुम्हें नहीं बताया बल्कि उन्होंने भी किसी से सुनकर बताया है या पढ़कर बताया है । उनके बताये साधन, भजन, मार्ग, संकेत द्वारा तुम वहां नहीं पहुंच सकोगे । जैसे पिता पुत्र को भगवान है सिखा देता है किन्तु पुत्र पूछे कि क्या आपने जाना है तो वह कहेंगे हमारे पिताने हमें कहा था कि ईश्वर पर भरोसा करो । ईश्वर है किन्तु हमने उसे जाना नहीं । अगर मिथ्या दृष्टि का भरोसा कर लिया तो फिर उनसे छूटना मुश्किल हो जायेगा वे अपनी जड़े गहराई तक फैला देंगी, वे तुम्हें चूस लेंगी, प्राणों को कमजोर कर देगी फिर तो छूटना भी मुश्किल होगा । पंडित जो कह रहा है वह शास्त्र के आधार पर कह रहा है । उसमें असली तो छूट ही गया है जिसके बारे में कहा है वह जड़ शास्त्र में नहीं उतर सकेगा, वह तो कहने वाले में ही छिपा है । सुनकर मानलेने से आवागमन का चक्र चलता रहेगा ।

क्या दुःख भी स्वप्न तो नहीं ?

जब किसी प्रेमी, प्रेमिका का अचानक मिलन हो जाता है तो उन्हें बड़ा सुख मिलता है । परन्तु उन्हें यह विश्वास नहीं होता है एवं अक्सर कह देते हैं कि क्या यह स्वप्न तो नहीं, क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ । नहीं, यह सच नहीं है यह जाग्रत का स्वप्न है ।

लेकिन जब जीवन में दुःख आ घेरता है तब ऐसा कभी नहीं कहते दिखाई पड़ते हैं कि यह स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ, कल्पना तो नहीं है । सुख मिला पहली बार तो तुम कहते हो; कहीं कल्पना तो नहीं है ? सुख को मानने को मन तैयार नहीं होता एवं दुःख को कल्पना कहने को मन तैयार नहीं होता । सुख को झूठलाने की इच्छा होती है एवं दुःख को मानने का मन होता है । तुम दुःख से पीड़ित होते हो किन्तु दुःख का त्याग नहीं करना चाहते । यदि तुम दुःख का त्याग करना चाहते होते तो अभी तक दुःख का त्याग हो जाता । तुम्हारे बिना पकड़े, दुःख रह नहीं सकता । दुःख मिटाने का मतलब है अपने आप को मिटाने को राजी होना । क्योंकि देहाभिमान ही समस्त दुःखों का केन्द्र है । तुम दुःख की जड़ देहाभिमान को छिपाये रखते हो, मन में इसलिये दुःख होता है । दुःख तुम्हारे बिना बच नहीं सकता ।

तुम्हारा मन जहां रस लेता है वही बन्धन है । जब मन वहां से विरस हो जाता है यही मन की वहाँ से मुक्ति है । 'मन ही बन्धन व मोक्ष का कारण है' अगर तुम्हारा मन कहीं है तो वहीं रस होगा और वही

उसका बन्धन है और तुम्हारा मन कहीं किसी में रस नहीं लेता, उसके लिये सब चीजे, सब विषय, सब व्यक्ति विरस हो गये–वही मुक्त है ।

ज + गत = जगत अर्थात् जो भागा जा रहा है जिसमें गति है, जो चला ही जा रहा है । यह जगत एक स्वप्न है क्योंकि यह भी प्रतिक्षण बदलता जा रहा है ।

जब जान लिया कि संसार मिथ्या है, झूठा है तो फिर कुछ पाने की आकांक्षा भी नहीं रहती । जब जान लिया कि रस्सी है सांप नहीं है तब उस सांप से बचकर दूर से चलना या हाथ में तलवार लेकर चलने की आवश्यकता ही क्या ? किसी को यह कहने की भी जरूरत क्या कि आगे रस्सी का सांप है तुम दूर से निकलना । जो माया है उससे बचना कैसा ? माया का अर्थ हुआ जो है ही नहीं । कामिनी, कंाचन से सावधान रहना । यह भी कहे जा रहे हो एवं संसार झूठा भी है । जो असत्य है इतना जान लिया तो तुम मुक्त हो ही गये ।

अगर तुम दुःखी हो तो अपने कारण जानना, अगर सुखी हो तो भी अपने को कारण जानना । इसी का नाम धार्मिकता है । क्योंकि अब तुम्हारे हाथ की बात है सुधार करना । अब तुम अच्छी तरह जान सकोगे कि दुःखी होने के लिये किस प्रकार व्यवहार दूसरों के प्रति करें । अब दुःखी होना चाहते हो मजे से वैसे विकृत कर्म बीज बोओ और रोओ । प्रेम बीज बोओ तो मजे से अमृत की प्याली पीते रहो एवं हसते हुए जीते रहो ।

उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे मारा, उसने मेरा अपमान किया उसने मुझे हरा दिया, मेरा धन लूट लिया – जो इस प्रकार वैर की गांठ अपने मन में नहीं बसाता है वह निर्वीकार भाव में जीने वाला व्यक्ति सदा शान्त रहता है ।

अहंकार के लिये किसी प्रकार की विशेषता की जरूरत है किसी स्थान, वस्तु, पद, सम्पति की जरूरत है किन्तु आनन्द हेतु किसी बाह्य सामग्री की जरूरत नहीं । देखिये सुषुप्ति में बिना बाह्य वस्तु एवं व्यक्ति के आनन्दानुभूति सब का अनुभव है । जब तक

तुम्हारे सुख के लिये किसी दूसरे पदार्थ व्यक्ति की अपेक्षा रहती है तब तक वह सुख पराया है । तब तक दुःखी रहोगे ।

सोचो कि कौन तुम्हें सुख देता है कौन तुम्हें दुःख दे पाता है । सब तुम्हारे मन का निश्चय है । अभी घंटे भर पहले जो बात तुम्हें दुःख रूप लगती थी, वही अब भी सुख रूप लगती है । घंटे भर पहले जो सुख रूप लगती थी अभी वह दुःख रूप लगती है । अगर तुम्हें यह बात दिखायी पड़ जाए कि दूसरा कोई सुख नहीं दे सकता तो फिर कोई दुःख कैसे देगा ? जब किसी ने आज तक तुम्हें सुख नहीं दिया तो दुःख कैसे देगा ?

इस संसार में कोई सदा नहीं रहेगा । प्रत्येक व्यक्ति के नीचे १० व्यक्तियों की लाशे दबी पड़ी है ग्यारवें व्यक्ति तुम उस पर बैठे हो एवं शीघ्र ही ग्यारवी लाश तुम हो जाओगे एवं बारवां कोई तुम्हारी तरह उसी जगह उस पर अहंकार कर बैठेगा । ध्यान रखें ! तुम लाखों, करोड़ों रुपये संग्रह करलो किन्तु कफन में कहीं जेब नहीं होता है । यदि तुमने वह धन कफन में बान्ध भी लिया तो वह भी दाह संस्कार के समय तुमसे छीन लिया जावेगा । यदि तुम उसे अपने मुंह से गील कर पेट में भरलो तो भी वह शरीर के भस्म होने पर यहीं रह जावेगा । तुम लाख प्रयत्न करो उसे अपने साथ नहीं ले जा सकोगे ।

अभी जिस धन, सम्पत्ति को अपना मान प्रसन्न हो रहे हो तुमसे पहले इसी धन, सम्पत्ति, जमीन, मकान, पत्नी, पति, पुत्र पर हजारों ने अपना अभिमान कर मर चुके हैं । अब तुम इसे कितने दिन अपना बनाकर रख सकोगे ? जो रुपये तुम्हारे जेब में अभी रखें हैं इन्हीं नोटों ने हजारों जेबों को खालीकर अब तुम्हारे जेब को भरा है । यह नोटों की मैली, कुचैली, फटी–पुरानी अवस्था बतारही है भला क्या यह अब तुम्हारे होकर रहेंगे ?

जिस व्यक्ति को यह बात समझ आगई उसी को संसार में रहने का ढंग आगया । इसी क्षण स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाता है । उसका स्वर्ग कल नहीं, अभी और यहां है ।

जब जायेंगे यहाँ से कुछ भी ना पास होगा
दो गज का एक टुकड़ा अपना लिवास होगा ।।0।।
जब आयेगा निमन्त्रण, रुक पायेंगे न एक क्षण।
रह जायेंगे पड़े सब, धन, कोष और कंचन।
जब आयेगा निमन्त्रण, रुक पायेंगे न एक क्षण।
रह जायेंगे खड़े सब, पति,पत्नी और स्वजन ।
कहतक ना पायेंगे तब मन में जो भाव होगा।
तन में जो कष्ट होगा।
दो गज का एक टुकड़ा अपना लिवास होगा ।।१।।
जब जायेंगे

क्यों हम किसे सतायें क्यों हम किसे रुलाऐं।
क्यों लूट धन किसीका अपना महल सजाऐं । (२)
जब जानते हैं अन्तिम मरघट में वास होगा।
भूमि में वास होगा ।
दो गज का एक टुकड़ा वह भी ना साथ होगा।।२।।
जब जायेंगे

कुछ भी नहीं है तेरा कुछ भी नहीं है मेरा।
कहते हैं इसको दुनियाँ दो पल का है बसेरा। (२)
जायेंगे जब बिछुड़कर कोई निरास होगा ।
कोई उदास होगा ।
न पति साथ देगा न पुत्र साथ होगा ।।३।।
जब जायेंगे

जायेंगे जब यहाँ से अपने उठाके डेरे ।
भव सिन्धु के भँवर में जायेंगे सब वे घेरे । (२)
कोई रामदास होगा कोई कृष्णदास होगा
केवल वही तरेगा जिसे आत्म भास होगा
जिसे सोऽहं भास होगा।४।।
जब जायेंगे

सद्गुरु मृत्युः

गुरु दर्शन का एक ही अर्थ है अपनी मृत्यु । गुरु मृत्यु है । अपने को मिटाने की तैयारी । गुरु के पास होने का मतलब मृत्यु के पास होना । गुरु के पास होना एक सतत साधना है । इसीलिये सत्संग की महिमा कही हैं । संत कबीर तो कहते हैं ''जो घर फूंके आपनो, चले हमारे संग'' ।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनिआध ।
तुलसी संगत संत की हरे कोटि अपराध ।।

गुरु के पास सभी प्रकार का अहंकार टूटेगा । तुम फिर से बिखेर कर बनाए जाओगे । तुम्हें निखारा जाएगा, पूर्ण शुद्ध स्वर्ण रूप किया जाएगा । गुरु के पास खाली जाओ, किसी अहंकार को लेकर मत जाओ ताकि वह तुम्हारे में कुछ नूतन भर सके, जगा सके । तुम उसे लिखने का मौका देना । गुरु के पास बासा उधार ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान लेकर मत जाओ । तुम सिद्धान्तों और तर्क के जाल में मत पड़ो ।

गुरु नाराज होकर तुम्हारी जिज्ञासा की परीक्षा करते हैं कि तुम नाराज गुरु को स्वीकार करते हो या नहीं ? प्यारे–प्यारे के साथ तो सब रुकना चाहते है वहाँ कोई कठिनाई नहीं । गुरु के कड़वे पन, रूखे पन, नाराज होने में जो रुका है, वही अमृत का अनुभव करता है । कहा है '**गुरु अमृत की खान**' ।

अगर प्रेम है तो यह भी गुरु का सौन्दर्य है । गुरु के पास जैसा घटे हंसकर स्वीकार कर लेने की कला शिष्यत्व है । मन से उदास होकर, नाराज होकर स्वीकार किया तो शिष्यत्व जगा नहीं है । गुरु का ओदश आनन्दपूर्ण स्वीकार होना चाहिये ।

गुरु के पास जब भी जाओ तो पूजा के भाव से जैसे मन्दिर में, तीर्थ में जाते हैं । पवित्र, आशा व प्रेम पूर्ण जैसे कि तुम साक्षात् परमात्मा के पास ही जा रहे हो तो क्रान्ति घटेगी । एक जन्म हुआ था माता–पिता से शरीर का अब असली जन्म होता है सद्‌गुरु से । अब जन्म होगा चेतना के बोध का ।

सद्‌गुरु के पास अहंकारी ज्यादा समय ठहर नहीं सकेगा । सद्‌गुरु तुम्हारा मनोरंजन नहीं कर रहा है कि तुम्हें कुछ और मजा आजाये कि तुम्हें अच्छा लगा और तुम समय काट चलेगये । सद्‌गुरु तो तुम्हारा मनोरंजन नहीं करता वह तो मनोभंजन करता है । मनोरंजन कर–करके ही तो तुमने अपने अनेक जन्म गंवाए । अब तो उठो ! अज्ञान निद्रा से एवं श्रेष्ठ पुरुषों की शरण में जाकर अपने कल्याण का साधन साक्षी भाव में उतरने की चेष्टा करो ।

सद्‌गुरु वही जो तुम्हारे भीतर पहुंचा दे और सत्संग सत्शास्त्र भी वही जो तुमको तुमसे जोड़ दे । सद्‌गुरुओं का संग करने से तुम्हें सत्य नहीं मिलेगा किन्तु सत्य की प्यास जग जावेगी । अपने में सत्य को खोजने की आकांक्षा बलवती हो जाये तो काफी है । वेद, पुराण, गीता, रामायण पढ़ने से सत्य खोजने की आकांक्षा बलवती हो जाये तो काफी है । अन्यथा शास्त्र पाठ अहंकार बढ़ाने का साधन मात्र है ।

सच्चे सद्‌गुरु, संत, महात्मा वही है जो तुम्हें साक्षी रहने की प्रेरणा देते हैं । सत्कर्म करने की प्रेरणा सब देते हैं किन्तु सत्कर्म करने में पाप कर्म भी अवश्य होता रहेगा । बिना पाप कर्म के मन्दिर बनाने जैसा सत कर्म भी नहीं हो सकेगा । वास्तविक संत तो तुम से यह कहता ही नहीं कि यह करो, यह न करो । वह तो यही कहता है

कि तुम अपने को जानलो कि तुम कौन हो । तुम केवल साक्षी हो जाओ । फिर जो होगा वही ठीक होगा । और अपने को न जानने के पहले जो भी होगा वह गलत ही होगा । साक्षी भाव में जागने से सब समस्याओं का समाधान हो जाता है । बिना जागे किसी समस्या का समाधान नहीं होता ।

ज्ञानी पुरुष तुम्हारे द्वारा या अपने शरीर के सुख–दुःख से जरा भी प्रभावित नहीं होता और जो होता है, वह ज्ञानी नहीं है । जब बुद्ध पुरुष तुम्हारे दुःख में तुम्हें सहानुभूति दिखलाते हैं तो एक नाटक है, सौजन्यता वश ताकि तुम्हें बुरा न लगे । पीड़ा न हो और तुम्हें भी जगाते रहते है कि छोड़ो यह सब माया है अब जागो । कब तक सोते रहोगे । अन्दर से हंसता है क्योंकि मरना, जीना, जन्म दिवस, विवाह आदि सब झूठे खेल है ।

जो साक्षी हो गया उसे दिखाई पड़ता है कि मेरे किये कुछ नहीं होता, सब हो रहा है मैं व्यर्थ ही आज तक कर्ता बन बोझ ढ़ोता आरहा था । ज्ञानी का मतलब है जो अपनी तरफ से कुछ नहीं करता । तुम ज्ञानी को न कर्मठ कहना न आलसी कहना । ज्ञानी अपने तरफ से कुछ होता ही नहीं, बनता ही नहीं । जो प्रकृति चाहती है उससे कराती रहती है ।

ज्ञानी तीर्थ है । ज्ञानी के आस पास तीर्थ की सुगन्ध फैली रहती है वहाँ जीव का अन्तरात्मा शुद्ध हो जाता है । अन्दर उसके ज्ञान की गंगा अहर्निश बहती रहती है । बाहर की गंगा तो शरीर की मैल, धूल बहाती है । लेकिन चैतन्य ज्ञान की गंगा से तुम्हारा चैतन्य, तुम्हारा आत्मा भी स्नान कर लेगा ।

अगर तुम सद्गुरु के पास खाली मन लेकर आए हो, तो भरे होकर जाओगे यदि तुम भरे मन से आये हो तो यहाँ से खाली लौट जाओगे । तुम जैसे अहंकार, दम्भ भरे आये थे वैसे ही अहंकारी लौट जाओगे । साधारण लोग जैसे रहते हैं वैसे ही तुम रहो । तुम नाम, वेश,

केश, तिलक, मुण्डनादि द्वारा असाधारण बन कर दिखाने की चेष्टा न करो । परिवर्तन आना है भीतर मन की धारणा में, तुम भीतर साक्षी हो जाओ । परमात्मा असाधारण नहीं है वह तो साधारण ही है ।

गुरु वही जो तुम्हें आत्म निर्भर बनाए । जो गुरु निर्भर न बनाए वह गुरु नहीं । गुरु तुम्हें तुम्हारे ही भीतर पहुंचाने का द्वार है । गुरु अपने में बांधले तो फिर वह तुम्हारा दुश्मन है, आत्म हत्यारा है। जैसे रामकृष्ण को तोतापुरी सदगुरु ने काली से हटाकर आत्मा में जोड़ा था ।

सद्गुरु सिवाय स्मरण दिलाने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करता है । जो तुम हो उसका ही तुम्हें होश करा देता है । जो मिथ्या मान रखा था उससे जगा देता है, बता देता है कि जो तुमने माना था वह सब भ्रम था, झूठ था । मान्यता थी जैसे रस्सी को सांप माना था, मैंने दीपक दिखा कर भ्रम भगा दिया ।

सद्गुरु का इतना ही अर्थ है वह तुमको भेड़ों के झुण्ड से शक्ति पूर्वक पकड़ बाहर ले आवे और तुम्हारे वास्तविक स्वरूप का, स्वभाव का स्मरण करा सके । तुम नाराज हो जाओगे कि यह मेरा मन्दिर जाने का, तीर्थ जाने, का पूजा–पाठ का समय है मुझे यहीं रहने दो, मुझे वेदान्त नहीं जानना । मैं हिन्दु, ब्राह्मण हूँ मेरा नित्य कर्म मुझे करने दो । मुझे मेरे धर्म से भ्रष्ट न करो । किन्तु सद्गुरु तुम्हें विचार दर्पण के सम्मुख खड़ा कर ही देगा एवं दिखा देगा कि जो राम, कृष्ण, महावीर, जीसस, गुरु एवं तीर्थ, मन्दिर, मूर्ति में है वही सच्चिदानन्द तुम हो । तब गर्जना निकल जाएगी **अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ** ।

तुम भेड़ नहीं हो भीड़ में फंस गये हो इसीलिए सिंह के शावक होकर भेड़ मान बैठे हो । जो तुम्हारे मां बाप जानते थे वही गलत ज्ञान तुम्हें तोते की तरह सिखा, पढ़ा मरकर चल गये, अब तुम वही सारे जीवन राम–राम करते रहते हो । रोज मन्दिर, माला, पूजा, पाठ करते रहते हो । कुम्भ चले जाते हो वहां तुम जैसी लाखों भेड़े

मिलजाती है जो तुम्हारे भ्रान्त धारणा को मजबूत करने में प्लाष्टर का काम करती है ।

थोड़ा सोचो वह जो बूढ़ा सिंह जो भेड़ों में खोगया था जंगल के सिंह से पूछे कि मुझे भी आपकी तरह सिंह बनना है इसके लिये कोई साधन मंत्र बताओ । और वह जंगल में रहने वाला सिंह उसे अपना शिष्य बना आसन, प्राणायाम सिखाकर एवं मैं सिंह हूँ, मैं सिंह हूँ का जप करना बतादे और कह दे कि धीरे-धीरे अभ्यास से तू सिंह हो जाएगा चिन्तन, मनन, निदिध्यासन से हो जाएगा । यदि ऐसा बूढ़ा सिंह करता है तो उसकी चालाकी कहलायेगी । उस बूढ़े सिंहका तो यही कर्तव्य है कि उस भैड़ों में रहने वाले उसके सिंह स्वरूप का बोध करादे । इसी प्रकार सच्चे सद्गुरु का यही कर्तव्य है कि वह जिज्ञासुको शिष्य बनाकर मंत्र, माला, पूजा पाठ में न फेसावे बल्कि उसे अपने आत्मा का बोध करादे ।

शिष्य होने का मतलब है अब दे दिया अपना हाथ गुरु के हाथ में जिधर ले जाय उधर चल पड़ो । जीवन सूखे पत्ते की तरह हो । स्वयं का कोई आग्रह नहीं जिधर प्रारब्ध पवन उड़ाले जावे उधर ही चला जाता है ।

कभी किसी धीर पुरुष को तुम क्रोध में देखो, नाराज देखो, उच्छृंखल देखो तो गौर से देखना उसके पीछे भी गहन शान्ति, मौन, प्रेम ही होगा । ज्ञानी पुरुष उदास हो, रोता हो, दुःखी हो, तो वह अपने लिये नहीं दूसरों के लिये हो रहा है ।

सद्गुरु का मतलब व्यक्ति नहीं अव्यक्ति हो जाना है । सद्गुरु के साथ रागात्मक सम्बन्ध जब तक न होगा तब तक सद्गुरु से दूरी रहेगी और तुम्हारे जीवन में सत्य प्रकट नहीं हो सकेगा । रागात्मक सम्बन्ध बने तभी कुछ हो सकेगा । सद्गुरु के पीछे तुम प्रेम में पड़े, उसके प्रेम में पागल हो गये तभी कुछ हो पायेगा । सद्गुरु हृदय में बस जाये, उसके लिये मतवाले हो जाओ यह गुरु शिष्य का

सम्बन्ध प्रेम का है । सद्गुरु व्यक्ति नहीं वह परमात्मा हो गया अव्यक्ति होना ही परमात्मा हो जाना है । वह शून्य हो गया है । मन को समर्पित करने से सद्गुरु मिलते हैं । सद्गुरु ने अपनी अस्मिता पौंछ डाली उसने अपना अहंकार मिटादिया । जब सद्गुरु तुम्हारा हाथ पकड़ता है तो परमात्मा ने ही तुम्हारा हाथ पकड़ा ऐसा जानना । उसके सभी व्यवहार को प्रसाद समझ प्रेम से ग्रहण करना ।

यदि तुम्हारे प्रति गुरु का प्रेम है तो यह भी गुरु का सौन्दर्य है । गुरु के पास जैसा घटे हंसकर स्वीकार कर लेनेकी कला शिष्यत्व है । मन से उदास होकर, नाराज होकर स्वीकार किया तो शिष्यत्व जगा नहीं है । स्वीकार होना चाहिये आनन्द पूर्ण ।

गुरु के पास जब भी जाओ तो पूजा के भाव से, जैसे मन्दिर में, तीर्थ में जाते हैं । पवित्र, आशा व प्रेम पूर्ण जैसे कि तुम साक्षात् परमात्मा के पास ही जा रहे हो तो क्रान्ति घटेगी । एक जन्म हुआ था माता–पिता से शरीर का अब असली जन्म होता है सद्गुरु से आत्मभाव का । अब जन्म होगा चेतना के बोध का ।

आचार्यो मृत्युः । गुरु मृत्यु है । एक जन्म माता–पिता द्वारा शरीर का हुआ दूसरा जन्म गुरु द्वारा आत्म भाव का होता है । जैसे मां को बच्चे के जन्म के समय बहुत पीड़ा होती है इसी प्रकार गुरु को शिष्य में आत्म भाव के जाग्रत कराने में, बड़ी कठिनाई होती है ।

ज्ञानियों को उनके द्वारा होने वाले कर्मों से कभी उन्हें मत तौलना । यदि ज्ञानी को कर्मों से देखा तो तुम ज्ञानी को कभी नहीं पहचान पाओगे । ज्ञानी कृत्य में समाता नहीं, ज्ञानी कर्म के पार, कर्ता से दूर साक्षी में ठहरता है । कृत्य का कोई मूल्य नहीं । इसलिए ज्ञानी के हाथ में तलवार भी मिल सकती है । कृष्ण ने महाभारत का युद्ध करवा दिया । कृष्ण को कृत्य से मत सोचना । वास्तव में जिसने अपने को द्रष्टा, साक्षी रूप में जान कर 'मैं कर्ता नहीं हूँ' ऐसा जान लिया वही ज्ञानी है । ज्ञानी के लिये कोई परिभाषा बांधना सम्भव

नहीं । ज्ञानी हर स्थिति से बाहर है । जैसे दुर्वासा सब खाकर भी उपवासी एवं कृष्ण अष्टरानियों के स्वामी व बच्चों के पिता होकर भी ब्रह्मचारी ही बने रहे ।

सद्गुरु अनेक नहीं होते हैं । भगवान का मिलना सहज होता है सद्गुरु का मिलना बहुत दुर्लभ है । हजारों बर्ष बीत जाते हैं तब कभी कोई एक सद्गुरु मिलता है । सद्गुरु के पास पहुंचना बड़े सौभाग्य की बात है । सद्गुरु मिला या नहीं उसकी एक ही पहचान है कि वह तुम्हें जैसा बतावे वैसा करने से, मानने से तुम्हारे भीतर अशान्ति, भय, चिंता, अहंकार, मोह कम हो रहा है या नहीं । सद्गुरु वह है या नहीं उसकी फिक्र छोड़ो – जो वह कहता है उसे करना । अगर वह सद्गुरु है, तो जो कहा है उसने उसे करने से तुम्हारे भीतर कुछ होना शुरु हो जावेगा । अगर सद्गुरु नहीं है तो उसके भीतर ही जब कुछ नहीं हुआ, तब तुम्हारे भीतर उसके कहने से कैसे हो जायेगा ?

सत्संग का यही अर्थ है : किसी ऐसे व्यक्ति के पास, जो मन्जिल पर पहुंच गया हो । उसके पास बैठना, होना, रहना भी बहुमूल्य है । उसकी हवा को भी पीना जो उसके श्वाँस में हृदय से छूकर बाहर आरही है । उन श्वाँसों को अपने भीतर ले लेना वह तुम्हारे चिंत्त दशा को बदल देगा ।

सद्गुरु मिलने के बाद तुम वही नहीं रह सकोगे । अब तो तुम्हें पूरा द्विज होना ही पड़ेगा । नया होना ही पड़ेगा । जिह्वा जैसे वस्तु के स्वाद को तत्क्षण जानलेती है, इसी प्रकार अधिकारी, श्रद्धालु तत्काल धर्म को आत्मा को जानलेता है । अपनी खोई हुई स्वरूप विस्मृति शिघ्र आ जाती है कि मैं यह शरीर नहीं अपितु द्रष्टा, आत्मा हूँ । जैसे किसी ने अपना चेहरा न देखा हो और अचानक दर्पण के सम्मुख आजाए तो वह तत्क्षण अपना चेहरा देख लेता है । ऐसा ही गुरु की निकटता में शिष्य के जीवन में क्रान्ति घट जाती है ।

सद्‌गुरु के पास लोग पहुंच तो जाते हैं किन्तु ऐसे खाली लौट जाते है जैसे उनके जीवन में कुछ हुआ ही नहीं । कढाई में कलछि चलती रहती है उसके द्वारा पकवान, खीर, दाल, सब्जी आदि बनाया जाता है किन्तु उन कढाई, कलछि दोनों को कोई स्वाद नहीं आता । इसी तरह जिन की बुद्धि अहंकार के कारण पथरा गई है, जड़ हो चुकी है उन्हें सद्‌गुरु द्वारा अमृत का पान कराने पर भी उन्हें कुछ भी असर नहीं होता ।

जब भी परमात्मा को पाने की इच्छा जाग्रत हो तो सद्‌गुरु के पास तिव्रता से चल देना । एक क्षण की भी देरी मत करना । पूजा, आरती, भोग, दीप, चन्दन जो कुछ कर रहे थे सब वैसा ही छोड़ निकल पड़ना । जैसे घर में आग लग जावे तो फिर आप अन्य की चिन्ता किये बिना शुभ अशुभ समय मुहूर्त पूछे, बिना दर्पण के सम्मुख गये, बिना सजे सवारे, बाथ रूम में नग्न हो तो भी वैसे ही बिना कपड़े पहने बाहर निकल भागते हैं ।

सद्‌गुरु से वर्तमान में ही सत्संग हो सकता है । अतीत के गुरु काम न आएंगे, भूत के गुरु काम नहीं आएंगे । जो अभी है, जो यहां है, जो है वही काम आ सकते हैं । मुहूर्त भर भी उनको पूज लिया तो सैकड़ों वर्षों की पूजा से श्रेष्ठ है । उसकी पूजा में झुक तुमने अपने को मिटाया । अपने को जो गंवाने को राजी है उसी को उत्तम शिष्य, सच्चा संन्यासी जानना । वह सच्चा भिक्षु है जिसने अपनी सारी सम्पदा अहंकार उपाधियों का त्याग कर दिया है । दूसरों से अपने सम्बन्ध में आज तक जो कुछ सुना है, वह तुम भुलादोगे । तभी तुम अपना साक्षात्कार कर सकोगे, सीधा–सीधा अपने आमने सामने हो सकोगे ।

ज्ञानी ज्ञान में जीता है, कर्म में नहीं । अज्ञानी अज्ञान में जीता है ज्ञान में नहीं । जो तुमसे कहता है संसार में जाने में खतरा है, गये कि, फंस जाओगे । ए.सि करंट है छूलिया तो चिपक् जाओगे ।

जैसे पृथ्वी व आकाश का मिलन कभी सम्भव नहीं इसी तरह संसार में किसी को कभी तृप्ति मिलना भी सम्भव नहीं ।

संत के द्वारा जो निंदा व आलोचना अज्ञानी को मालूम पड़ती है ज्ञान की दृष्टि से उसे करुणा जानो । तुम भटक न जाओ, श्रेष्ठ को त्याग निकृष्ट को न चुनलो इसलिये असत्य की निन्दा करना पड़ता है । क्या सद्‌गुरु को निन्दा करना चाहिये ? ऐसा जो सद्‌गुरु के प्रति आरोपण करने वाले व्यक्ति से पूछा जाय कि क्या कोई असत्य की बिना निन्दा, आलोचना किये कभी सद्‌गुरु हुआ है ? जिन्होंने सत्य के प्रतिपादन हेतु असत्य की आलोचना नहीं की उन्हें संत नहीं राजनेता समझना चाहिये । पृथ्वी पर ३०० धर्म हैं यदि उनमें समन्वय जुटाते रहे तो कभी भी मंजिल पर नहीं पहुंच सकोगे चौरास्ते पर ही घूम फिर कर खड़े रहोगे । पानी के लिये हर दिन पांच फिट गड्डा नया खोदते रहोगे तो प्यासे ही मरना होगा । एक जगह यदि १0 दिन खोदते रहे तो पानी निकल आएगा ।

सद्‌गुरु का अर्थ होता है अब तुम मिटे, अब वही बचा । किसी से तुमने अपने गुरु की निंदा सुनली और तुम गुरु के प्रति श्रद्धा में डगमगाये तो समझना अभी तुमने उसे अपना समर्पण नहीं किया, अपना हृदय उसे अर्पित नहीं किया । निंदा सुनकर गुरु पर श्रद्धा बनी रहे तो जानना कि पूर्ण समर्पण हुआ है ।

ज्ञानी सहज होता है किसी को अच्छा लगे तो ठीक, न लगे तो ठीक तुम्हारे कारण ज्ञानी अपने को किसी ढांचे में नहीं ढालता । तुम्हारी अपेक्षा के अनुसार अपने को नहीं चलाता । वह अपने मर्जी पर चलता है । प्रारब्ध से जैसा निश्चित है वैसा ही व्यवहार करता है ।

जब तुम्हारे पास सब हो एवं खाली पन लगे, बुद्धि हो किन्तु बुद्धुपन लगे, शक्ति हो किन्तु निर्बलता लगे, धन हो किन्तु निर्धनता लगे तो सद्‌गुरु के पास जाना, सद्‌गुरु को खोजना ।

सद्‌गुरु को जब सुनो तो ऐसे सुनो जैसे सारा शरीर एक कान है । पूरा का पूरा गुरु के अमृत वचनों को पी जाओ । जैसे प्यासा पानी पी जाता है । हृदय खोलकर सुनो गुरु के सम्पुर्ण वचनों को पीजाओ तो घटना घट जायेगी ।

जीवित गुरु को पूजना बहुत कठिन है क्योंकि वह तुम्हें रोज–रोज तुम्हारे अहंकार पत्थर को नष्ट कर मुक्त करके ही छोड़ेगा । इसीलिये मरे गुरु को पूजना आसान है क्योंकि वह तुम्हारे अन्दर किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकता । तुम ही अपनी मन मानी करते रहोगे ।

लोग संतों के पास जाते ही नहीं । मन्दिर, तीर्थ लाखों लोग पहुंच जाते हैं । यदि लोग जाते भी हैं तो ऐसे सन्तों के पास जाते हैं जो उनकी आंखों पर अज्ञान पट्टी बांध देते हैं, हाथों में कर्म काण्ड की जंजीर बांध देते हैं उनके घाव पर, केन्सर पर, फोड़े पर सुगन्धि छिड़क कर पट्टी बाध सुन्दर प्रशंसा के पुष्पों की माला पहना देते हैं ।

तुम गुरु या परमात्मा की कितने ही सुन्दर ढंग से स्तुति करो प्रार्थना करो, गीत गाओ, नाचो इससे कुछ नहीं होगा । तुम अपने में कब लौटोगे । स्तुति में समय खराब न करो । बहुत स्तुति, मन्दिर, मस्जिद प्रार्थना पूजा कर चुके । क्या पाया ? हाथ खाली के खाली । अब भीतर के मन्दिर में जाओ वहां का अनहद नाद जगाओ । असली मन्दिर के घंटा सुनो, जो तुम्हारे भीतर सोया है उसे जगाओ । अपनी तलाश करो । **मैं कौन हूँ** । स्वयं को जानो तो ही परमात्मा को जान सकोगे, क्योंकि परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है । तुम्हारा होना है । तुम्हारा अस्तित्व है । तुम किसी का भी सहारा पकड़ो तो भटकोगे । वह एक दिन छूटेगा । गुरु वही जो जिज्ञासु को सब ओर से हटा स्वयं पर लौटा दे । गुरु परमात्मा में, अपने में प्रवेश का द्वार बनता है दीवार नहीं बनता है वह अपने में रोकता नहीं है ।

मैं तुम्हें अपने में रोकना, फंसाना नहीं चाहता । मेरे में होकर मुझे द्वार बनाकर खुले आकाश में बाहर आजाने का निमन्त्रण देता हूँ । मैं दिवार बन रोकना नहीं चाहता । तुम पहुंचे हुए ही हो ।

मैं तुम्हारे सारे बन्धनों को तोड़ रहा हूँ । मेरे साथ तो बहुत हिम्मत वाले ही चल सकेंगे अगर कमजोर हैं तो किसी मान्यता, अन्धविश्वास की कारागृह में जाकर रहो । मेरे पास वही आसकता है जो समस्त मान्यता को आग लगा सके, '**जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ**' – कबीर

सत्य जब भी किसी महापुरुष के द्वारा प्रकट होगा तो महान क्रान्तिकारी होगा, विद्रोही होगा, बगावती होगा । क्योंकि तुम असत में जीने के अभ्यासी हो गये हो । वह जब भी आएगा तो तुम्हारे विचारों, मृत धर्म लाशों, मान्यताओं, अन्ध विश्वास के बीच टकराहट होगी तभी वह सत्य तुम्हें वहां से उठाएगा, आगे शिखर पर पहुँचाएगा । संस्कार, संस्कृति, सभ्यता, धर्म पुरातन का जो घर है उसे जला देगा एक नया अमृत जीवन देगा ।

हे आत्मन् ! परमात्मा व जिज्ञासु के बिच गुरु आवश्यक सेतु है । किन्तु यदि वह परमात्मा व तुम्हारे बीच दीवार बन जावे तो यह दुर्भाग्यपूर्ण भी है । क्योंकि यह मन्जिल तक पहुँचने में रुकावट कर रहा है ।

गुरु को सेतु बनालो, गुरु को नौका बनालो, गुरु को सीढ़ी बनालो तो यह परमात्मा तक पहुँचने में सहायक है । गुरु से बढ़े तो अन्तिम मन्जिल परमात्मा एवं गुरु में रुके तो संसार । जैसे मीरा के लिये **कृष्ण**, रामकृष्ण के लिये **काली** आखरी बाधा बने हुए थे । गुरुने जैसे आखरी बाधा को हटा दिया वैसे ही परमात्मा के साथ एकत्व को प्राप्त हो गये । फिर गुरु हट जाता है । असत गुरु वही है जो तुम्हारे व परमात्मा के बीच में रुकावट बन जावे । यह रुकावट गुरु के तरफ से खड़ी हो जावे, चाहे जिज्ञासु के तरफ से बात एक ही है ।

गुरु प्रथम शिष्य को संसार से खींचता है अपनी ओर आकर्षित करता है फिर उसे अपने से हटा परमात्मा की ओर धक्का भी देता है कि प्रथम संसार से हट मुझसे प्रेम किया यह अच्छी बात है किन्तु अब मुझसे भी हटो परमात्मा में लगो यही सर्वोत्तम बात है ।

मां बच्चे को प्रथम हाथ का सहारा देती है एवं बाद में धीरे–धीरे छोड़ती जाती है ताकि एक दिन वह अपने पैरों पर अपने सहारे चल पड़े । यदि मां न छोड़े तो बच्चे का जीवन पंगु बन जावेगा । गुरु भी बीच–बीच में शिष्य को अपने व्यवहार से वचन से धक्का देता है ताकि एक दिन वह गुरु को छोड़ने में समर्थ हो सके । जैसे कुम्हार एक भीतरी हाथ से घड़े को सहारा देता रहता है तथा दूसरे हाथ से थापी की चोंट मार उसकी कुरुपता को दूर कर सुन्दर सुडोल बनता है । इसी प्रकार सद्गुरु शिष्य का कल्याण करता है ।

शिष्य गुरु की करूणा, उदारता, प्रेम, दया को नहीं समझ सकेगा । वह तो शिकायत करेगा कि नये–नये से प्यार एबं पुराने, बूढ़ों से तिरस्कार । यदि तिरस्कार करना था, अपने से हटाना ही था तो प्रथम हमसे प्यार क्यों किया ? पर शिष्य यह नहीं समझता कि गुरु की तरफ से प्रथम प्यार न मिला होता तो वह संसार कीचड़ से कभी नहीं निकल पाता, उसी में फसा दुःख पाता रहता ।

आग लगी आकाश में, झर झर पड़े अंगार ।
सन्त न होते जगत में, तो जल मरता संसार ।।

हे आत्मन् ! प्रायः साधक विभूतियों, चमत्कारों, ध्यान, ज्योति, अवतार एवं गुरु में इतने आसक्त हो जाते हैं कि वे भूल ही जातें हैं कि हमे अभी एक कदम और आगे बढ़ना है । गुरु, ज्योति, विभूति परमत्माके की ओर जाने के लिये माइलस्टोन तो हैं, पर मन्जिल नहीं है। सीढ़ी, सेतु तो हैं लेकिन मार्ग पर घर बना लेना ही मूढ़ता है । इनका उपयोग कर आगे बढ़ना ही समझदारी है ।

हे आत्मन् ! दंभिगुरु मन्जिल पर पहुंचने नहीं देगा, किन्तु सच्चा सद्गुरु वह तुम्हें अपने पास ज्यादा देर तक रुकने नहीं देगा ।

वह तुम्हें धक्का देगा । वह ऐसा धक्का देगा कि फिर तुम सीधे परमात्मा के शरण में गिरोगे और किसी तरफ नहीं फंस सकोगे । बुद्ध अपने शिष्यों से कहते थे कि यदि तुम्हारे व परमात्मा के बीच मैं भी आऊँ तो तुम मेरे टुकड़े कर देना, काली के प्रति जैसे राम–कृष्ण ने किये था । उसी तरह रास्ते से मुझे भी हटा देना । गुरु ऐरो(➪), सेतु, सीढ़ी, नौका का यही प्रयोजन है कि तुम लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ो वही न रुको । ध्यान, मुर्ति तुम्हें अपने से कभी नहीं हटा सकेंगे क्योंकि वे जड़ है और तुम उनके मोह में, रूप माधुरी में फंस गये हो किन्तु गुरु चैतन्य है वही तुम्हें अपने से हटाने के कई प्रकार से अवसर तैयार कर देगा । किन्तु मूर्ख शिष्य गुरु से हटना ही न चाहे तो फिर वेचारा गुरु अकेला कुछ नहीं कर सकेगा । यह तो दोनों के सहयोग से ही सम्भव होगा । याने शिष्य भी अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचना चाहै एवं सद्गुरु भी उसे पहुँचाना चाहता हो । सद्गुरु अपने में रोककर शिष्य का जीवन बर्बाद करना नहीं चाहता है और तभी गुरु शिष्य के पवित्र सम्बन्ध की सफलता है ।

आत्मा निरपेक्ष, अखण्डानन्द स्वरूप है । यदि गुरु, मुर्ति, ध्यान, ज्योति, सत्संग, एकान्त स्थल, विषय भोग द्वारा जीव को आनन्दानुभूति होती है तो वह उसका आनन्द अपना नहीं है वह आनन्द पराया है, परतन्त्र है स्वतन्त्र नहीं है ।

लोग मुर्दे पर भरोसा ज्यादा करते हैं उसका कारण है कि मुर्दे के साथ जैसा व्यवहार करना चाहते हो कर सकते हो पूजा करो, कपड़े पहनाओ, तोड़ो, फोड़ो कोई रुकावट नहीं । जिंदा सद्गुरु के साथ तुम जो चाहोगे वह न करा सकोगे । गुरु जो चाहेगा वही होगा ।

सद्गुरु की बात को पूरा सुनने के पहले सुनते समय केवल सुनते ही रहो । कुछ सोचो, विचारो मत । फिर पीछे गुनों, विचारों तो ठीक से । जिन्होंने गुरु को, अष्टावक्र को, शुकदेव को, जनक को ठीकसे सुना वे श्रवण मात्र से मुक्त हो गये ।

देहाध्यास छोड़ो

जो व्यक्ति इस बात को ठीक से समझ गया है कि मैं शरीर नहीं हूँ वह फिर दुबारा शरीर में नहीं आ सकेगा । जो भी आत्म भाव में स्थिर हो गया, वह जीवित ही मुक्त होगया है । क्योंकि शरीर में आने का जो मूल हेतु है कि मैं शरीर हूँ, वह उससे छूट गया – तादात्म्य टूट गया । मैं शरीर हूँ इसी कारण शरीर से आत्मा जुड़ी है । शरीर ने किसी को नहीं पकड़ा है तुमने देह को पकड़ा है । जब तुम स्वरूप में जाग जाते हो देह निर्जीव हो जाती है । मैं शरीर नहीं हूँ इस निष्ठा से शरीर की जड़े उखड़ जाती है शरीर सूख जाता है ।

तुम अपने को शरीर से अलग नहीं कर पारहे हो इसी कारण तुम्हें मेरा शरीर दिखाई पड़ता है किन्तु मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ । शरीर किसी का भी पूरा स्वस्थ नहीं हो सकता, न रह सकता । मेरा सम्बंध उससे टूट गया है । तादात्म्य टूट जाने पर शरीर स्वस्थ नहीं हो सकता । फ्रीजर बाक्स से बर्फ बाहर हो जाने पर वह धीरे–धीरे नष्ट हो ही जाता है उसे बचाया नहीं जा सकता, क्योंकि बर्फ का प्राण, जीवन तो अतिशय शीतल जल वायु है । इसी प्रकार ज्ञानी का देह से सम्बन्ध तथा अहं छूट जाने से शरीर दिन–दिन घटता ही जायगा । क्योंकि जीवन का सम्बन्ध देहभाव से है ।

शरीर की चिंता करना, उपचार करना उचित है फिर भी वह जायगा । देह के प्रति मोह से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि अपने

को व शरीर को अलग–अलग देखो । स्वयं को आत्मा देखो, शरीर को भूलो । शरीर को मरना है तो रुग्ण होकर मरेगा । शरीर के भीतर तुम उसे अपना होना जानो जो सनातन है, अमर है जो अनादि अनन्त है ।

जो साधन से, तैयारी से, समय से मिलता है वह संसार है, जिससे जी भर जाए वह प्रेम नहीं ।

लोग गाली देने में शिघ्रता करते हैं । कल देंगे ऐसा नहीं सोचते किन्तु प्रेम मांगने पर भी नहीं देते हैं । लोग सभी शिकायत करते हैं कि वह हमें प्रेम नहीं करता । मांगने पर भी प्रेम नहीं बांटा जारहा है जब कि गाली, निन्दा बिना परिणाम को जाने तत्काल देने, करने को तत्पर रहते हैं ।

तुम्हें कोई देख गाली दे तो तुम चिन्ता न करो तुम उसे किंचित् भी स्वीकार न करो तो वह गाली तुमसे टकराकर तुममें प्रवेश न हो पुनः उसी गालीदेने वाले के पास लौट जाएगी । तुम्हारा असंग होना ही पर्याप्त है ।

नींद प्रतिदिन की छोटी मौत है, मौत जीवन के अन्त में होने वाली बड़ी नींद है । पुराने वस्त्र को त्यागने जैसी मौत है । नींद ताजा बनाकर उठाती है, मृत्यु बूढ़ापे को छीन बचपन दिलाकर ताजगी भरकर जगाती है ।

यह मरा, वह मरा, यह तुम कब तक देखते रहोगे, यही दशा तुम्हारे साथ होने वाली है अब समय आ चुका है । जो सुनिश्चित है वह मृत्यु है और सब भाग्य की बात है धन, यश, सन्तान, सम्पत्ति मिले न मिले किन्तु मृत्यु निश्चित है तो फिर आज ही मानलो कि मैं मर ही गया । अशान्ति, चाह खत्म । हम सब मृत्यु की कतार में पंक्ति में खड़े ही हैं आगे वाला हटा कि हमारा शरीर मृत्यु के द्वार की तरफ बढ़े ।

कौन बचने की चेष्टा नहीं करता ? पर कौन बचपाता है ? मौत से कौन नहीं लड़ता ? कोई मौत से जीता है ? मौत सबको हरादेती है । जब श्वांस श्वांस मर ही रहे हो तब हंसी खुशी किस बात

की ? तुम कहीं से भी जाओ, किधर भी जाओ राजा या भिखारी, मूर्ख या पण्डित, बहादुर या कमजोर सब मरघट में ही पहुंच रहे हैं ।

मौत एक दिन नहीं घटती है श्वांस–श्वांस में घट रही है । सत्तर साल का बूढ़ा अचानक एक दिन में नहीं मरता है । वह तो जन्म से ही मरते–मरते चला आ रहा था व आज उसका मरना पूरा होगया । जिस मृत्यु की यात्रा पर निकला था बचपन से वह अब पूरी हो गई । जन्म के दिन से ही मृत्यु शुरु हो गई, जन्म का दिन ही मृत्यु का दिन है । इधर बच्चा जन्मा नहीं कि उधर मरना शुरु होगया ।

काश तुम जरा आंख खोल कर देखो तो दो प्रेमी प्रेमिका के मिलन में क्या हो रहा है ? दो अस्थि पंजर का घर्षण । हड्डी–हड्डी का मांस–मांस का घर्षण जिसे अज्ञानी आलिंगन कहता है । लेकिन ढका है चाम से, खूब सुन्दरता से ढका है पर है तो हाड़–मांस मज्जा ही । यह शरीर मानो हड्डियों से बना एक मकान है जिसे मांस से छबाई कर चमड़ी की पुताई से ढक रखा है । यहां कोई किसी का नहीं है यह शरीर क्षण भंगुर है । तुमही अपने देह पर भरोसा नहीं कर सकते तब औरों का क्या भरोसा ? यह सड़न, गन्दगी, दुर्गन्ध का भण्डार है ।

दिन में जो सुन्दरतम दिखाई पड़ता है । रात नींद पर भयावह हो जाता है । आंख खुली, मुख खुला, नाक का खर्राटा, लार टपक रही है मूत्र या रज वीर्य बह रहा है । सृंगार बिखर गया, कपड़े नीचे से ऊपर चढ़ टांगे खुली पड़ी, छाती लटक रही है दांत निकल पड़े हैं, बाल नकली गिरे पड़े है । कपड़े खुले पड़े हैं, मासिक धर्म से रक्त, बह रहा है। पानी का बुलबुला जब तक है, फटा की पता नहीं किधर गया । है तब तक सूर्य की चमक हीरे जैसा चमकता है यह जीवन रहने तक शरीर चमकता है जीवन गया शरीर समाप्त सिर्फ एक वस्तु है जो जराजीर्ण नहीं होती है । वह है तुम आत्मा, शरीर मिट्टी है मिट्टी में मिल जायगी । मृत्यु से पहले उसे जानलो जिसकी मृत्यु नहीं है जिसका जन्म नहीं है ।

जो चीज जोड़कर बनायी गई है वह टूटेगी । जुड़े से मत जुड़कर रहना वह तो निश्चित ही टूटेगी । मकान, रथ, साइकिल, घड़ी, चैन कब तक बने रहेंगे । जो अखंड है, अजोड़ है उसे खोजो वह कभी नहीं टूटेगा । जिसका खंड नहीं उसका विसर्जन कैसे हो सकेगा ।

यह शरीर तो व्रण है इसमें तो घाव ही घाव है रोग ही रोग छिपे पड़े है, सब रोगी है । जब तक रोग प्रकट नहीं हुआ है तब तक व्यक्ति को स्वस्थ होने का धोखा है । बीज, रोग, समय सुविधा उपयुक्त वातावरण की खोज में पड़े हैं, समय मिलने पर प्रकट हो जाएगें । बीमारियां तो सभी के भीतर है । बीमार होने पर बीमारी नहीं होती है बीमारी है इसलिये बीमार हो गया । किसी की प्रकट हो गई किसी की प्रकट नहीं हुई इतना ही बीमार व स्वस्थ व्यक्ति में भेद है प्रतिक्षा में बैठे है रोग के बीच ...

जरा सोचो यह शरीर इतने बीमारियों का घर जिन्दा कैसे अभी तक रह गया । मर गया उसका आश्चर्य नहीं, जीवित कैसा रह गया यह आश्चर्य है ।

तुम्हारा होना न शरीर में है न मन में है, दोनों खो जाने वाले हैं दोनों पंच भूतों का गठन है । तुम्हारा होना तो उसमें है जो शरीर और मन के पार खड़ा है । वह दोनों को देख रहा है, जो शरीर व मन दोनों का साक्षी है ।

दीवारों के नीचे, दरारों में छोटे पौधे पैदा होकर जड़े फैलाते जाते हैं फिर तो वे पौधे उखाड़ने में दिवार, मकान भी गिर जाते हैं अतः पौधे को शिघ्र ही उखाड़ देना चाहिये । इसी प्रकार अन्ध विश्वास की जड़ों की फैलने ही न दे अन्यथा उसे उखाड़ने, काटने, जलाने में बहुत पीड़ा होगी ।

सत्य के लिये तुम बाहर भटक रहे हो । तुम कहां खोज रहे हो । किससे मांगने जा रहे हो । जो यह तुम्हारे भीतर की सम्पद है यह किसी और से नहीं मिलेगी । जन्मों–जन्मों से अनेक द्वार पर

भीख मांगी किन्तु अपना भिक्षा पात्र तो देखो कितना मिला, ज्यों का त्यों खाली का खाली ।

क्रोध से बड़ी मूढ़ता नहीं है । दूसरे की भूल पर, मूढ़ता पर तुम अपने को दंड देते हो । एक आदमी ने तुम्हारी तरफ मुंह कर गाली दी, तकलीफ उसे थी, कसूर उसका था, उसने अपनी पीड़ा को शान्त करने के लिये गाली निकाली आपने उसे अपने लिये क्यों स्वीकार कर लिया ? इस नाम के व्यक्ति अन्य भी है । समझलो वह तुम्हारे पीछे ही खड़ा हो, तुमने शिघ्रता से उसे बीच में ही अपने लिये क्यों स्वीकार लिया कि मुझे गाली दी । अब तुम उस पर क्राधित हो रहे हो, क्रोध करके दण्ड तुम अपने को दे रहे हो । तुम उसे स्वीकार मत करो । गाली उसने दी यह उसकी समस्या है । तुम उसे ग्रहण करो यह आवश्यक नहीं है, तुम क्यों बीच में आते हो । उस गाली को लेना न लेना तुम्हारे बस में है । गाली देना न देना यह उसके बस में है । मैं चाहूँ तो उस गाली को स्वीकारूं, न स्वीकारूं यह मेरे वश में है । गाली देने वाला दो तरफा दुःख भोगता है । गाली का तीर दोहरा है ।

गाली आवत एक है, पलटत होय अनेक ।
जो रहीम पलटो नहीं, वाकी एक की एक ।।

गाली का उत्तर गाली से मिला तो फिर और दुःख गाली देने वाले को ही भोगना पड़ेगा । जब हम किसी के व्यवहार को अपने भीतर ले जाते हैं तभी वह प्रतिक्रिया में परिणित हो जाता है । तभी वह सक्रिय हो जाती है । तुम अकारण ही अपने भीतर दुःख का बीज पैदा कर लेते हो । तुम्हें दूसरे के दिये व्यवहार, गाली आदि को स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं है । प्रतिक्रिया में दूसरा मालिक है । क्रिया में तुम मालिक हो । जब करना है क्रोध कर लेते हो, नहीं तो नहीं ।

जो देह भाव में जी रहा है वह सोए–सोए जी रहा है वह मृत्यु की ओर जा रहा है । जो साक्षी भाव में जी रहा है वह अमृत की ओर

चलने लगा है । वह रास्ता अमृत का है । जब तक सद्‌गुरु का ज्ञान प्रकाश आपके अन्तःकरण रूपी घर में प्रवेश नहीं हो पाया है तब तक आपका घर अन्धकार पूर्ण है । तुम्हारे घर में अमृत के झरने छिपे हैं, खजाने शाश्वत के छिपे हैं । लेकिन घर में अन्धेरा है तुम अंधेरे घर के वासी हो । जिन्हें ज्ञान का प्रकाश अच्छा नहीं लगता, अपना अज्ञान अन्धकार ही प्रिय लगता है वे मनुष्य रूप में जाति के उल्लू ही है । उल्लू पक्षी को दिन का प्रकाश शत्रु रूप लगता है रात्रि का अन्धकार जीवन रूप लगता है ।

यह तुम्हारी भ्रान्त धारणा है कि तुम मरण धर्मा शरीर हो तुम तो अशरीरी अमृत आत्मा हो । अमृत पुत्र हो । तुम शरीर के जन्म के पहले भी थे एवं देह मृत्यु के बाद भी रहते हो । तुम यह भूल ही गए हो कि तुम शरीर से पृथक् हो, जब शरीर मरता है तो तुम मानते हो कि मैं मरा । यह देह के साथ प्रमाद, मूर्छा, तादात्म्य तोड़ना पड़ेगा ।

जैसे हम श्वँास को देखने लगते हैं हमारे आत्मा व शरीर में फासला बढ़ता जाता है । बुद्ध अपने अनुयायियों को एक ही साधना सिखाते थे आनापान–सतीयोग याने तुम अपनी श्वँास के आने–जाने को देखते रहो उसकी स्मृति रखो । यदि एक माह यह अभ्यास करलें तो हम शरीर को पृथक् अपने से देख सकेंगे कि शरीर अलग पड़ा है और मैं उसे देख रहा हूँ । शरीर में रहते हुए शरीर से बाहर होने का अनुभव हो सकेगा । जानते हुए श्वांस भीतर जाए और जानते हुए श्वांस बाहर आए । यदि उठते–बैठते बस, ट्रेन में आते–जाते, जागते–सोते यह ध्यान रख सके कि श्वांस भीतर आरही है कि बाहर जारही है तो मन उतनी ही शान्ति की गहराई को उपलब्ध हो सकेगा । फिर मन अपने आप उधर जाने लगेगा । प्रथम आप एक माह अभ्यास करेंगे फिर मन उधर खींचता रहेगा । मन का स्वभाव है जहां उसे आनन्द मिलता है स्वयं उधर चला जाता है । एक बार हम उसे रास्ता पकड़ा दें तो वह आनन्द की ओर दौड़ता रहेगा । जहां पूर्णानन्द है वही परमात्मा है ।

जब तुम छोटे बच्चे के शरीर में थे, तब तुमने उस बच्चे के शरीर के साथ तादात्म्य कर मैं बच्चा हूँ इस भ्रान्त धारणा को पकड़ लिया । तुम तो न कभी बच्चे थे, न किशोर थे, न यूवा थे, न प्रौढ़ थे, न कभी बूढ़े होकर मरे हो, न तुम्हारा पुनर्जन्म है । बच्चे का चैतन्य उतना ही पुराना है जितना राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर का । वह चैतन्य तभी से है जब से सृष्टि है । इसीलिये इसे सनातन, नित्य, अविनाशी, अजन्मा अनादि कहा जाता है । फिर जब तुम किशोर शरीर में थे तब उस शरीर से एकता कर मैं किशोर मान लिया । जब तुम यूवा शरीर में थे तब मैं युवा हूँ ऐसा मिथ्या अभिमान कर लिया और जब शरीर बूढा हुआ तब उस दृश्य शरीर से तादात्म्य कर मैं बूढ़ा हूँ ऐसा मानलिया । शरीर के धर्म को, अवस्था को नाम–रूप को, जाति–आश्रम को, सम्बन्ध–परिणाम को, जन्म–मृत्यु को, उम्र–वजन को, पद–प्रतिष्ठा को, अंग भंग होने को अपना मानने लगजाना अज्ञानी पुरुष का लक्षण है । यह तो ऐसा ही अज्ञान है कि कपड़े नये तो मैं नया, कपड़े काले, गोरे तो मैं काला, गोरा, कपड़े पुराने तो मैं पुराना जराजीर्ण हो गया ।

देह की अवस्था को अपना कहना, मानना, जानना तो ऐसे हुआ जैसे कि ट्रेन बम्बई में रुकी तो ट्रेन में बैठा मैं बम्बई, दिल्ली में ठहरी तो मैं दिल्ली, बीना में रुकी तो मैं बीना इसी प्रकार शरीर यात्रा के यह बचपन, किशोर, यूवा, प्रौढ़, वृद्ध, बीमार, जन्म–मृत्यु आदि स्टेशन है । यह तो शरीर के पड़ाव हैं । आप केवल द्रष्टा साक्षी आत्मा हैं । आप बच्चे, किशोर, युवा, प्रौढ, रोगी, बूढ़े मरण धर्मी नहीं है ।

इस शरीर को घड़े के समान, मकान के समान, वस्त्र के समान अनित्य, क्षण भंगुर जानो । केवल बोलने से काम नहीं बनेगा । याद करने से, रटने से कुछ काम नहीं बनेगा । जानना पड़ेगा । क्योंकि जानने से मुक्ति, निर्भयता, शान्ति आदि है । शरीर मिट्टी से बना एक दिन मिट्टी में मिल जायगा । ऐसा जिसे ज्ञान हो गया वह देह बन्धन से मुक्त हो गया । जिसने यह जाना कि 'मैं शरीर हूँ' बस

सब भ्रान्ति सब दुःख, चिन्ता, भय यहां से प्रारम्भ हो जाते हैं । जैसे तुमने अपने वस्त्रों को अपना होना मान लिया है, तुमने अपने घर को अपना होना मान लिया है यह जैसा महान है इसी प्रकार तुमने इस शरीर को, जिसमें तुम रहते हो उसे अपना होना मान लिया है । धर्मशाला में थोड़े समय के लिये ठहरे हो, सुबह हुई छोड़कर यात्रा पर निकल पड़ोगे । दो दिन की जिन्दगी है जिसमें एक दिन मौत का है एक दिन की जिन्दगी है । अतः अपना कल्याण करलो । क्यों अंहकार करते हो क्षणिक धन, बल, पद, रूप पाकर ?

जो तुम्हारा नहीं है उसे तुमने अपना मान लिया है इसी से छिन जाने का टूट जाने का, मर जाने का, भय बना रहता है । जो तुम्हारा है वह कभी किसी के द्वारा छिनेगा नहीं । अभयता उसीको होती है जिसने अपने को जान लिया, जो सत्य है । जिसे कोई छीन नहीं सकता । जो तुम्हारा है, जिसके तुम मालिक हो । उसे मांगने की जरूरत नहीं । तुम्हें तो परमात्मा ने उसका मालिक बनाया ही है और जो तुम्हारा नहीं उसे कितना ही इकठ्ठा करो, बन्द कर रखो, तुम उसके मालिक कभी नहीं बन सकोगे । जैसे आकाश को मुठठी में नहीं बांध सकोगे ।

जिसने काम को समझा, क्रोध को समझा, लोभ को समझा, मोह को समझा वह उससे दूर हटने लगा । काम, क्रोध, लोभ, मोह के द्वारा आज तक क्या मिला ? केवल नर्क । तुमने किसी पर क्रोधाग्नि की वर्षा की, गाली की वर्षा की उस पर क्रोधाग्नि, गाली का प्रभाव पड़ेगा या न पड़ेगा यह उसके ऊपर निर्भर करता है कि वह उसे ग्रहण करेगा अथवा न करेगा । किन्तु उस पर अग्नि वर्षा करने से पहले तुम्हें अपने अन्दर अंगारे तैयार करना पड़ेंगे । वो अंगारे प्रथम तुम्हें जलाएंगे, फिर तुम दूसरे पर बर्षा करने जाओगे । यह नासुर, यह छिद्र तुम्हारे भीतर तैयार होगा फिर उसमें फोड़े पड़ेंगे, दुर्गन्ध निकलेगी, मवाद निकलेगा । गाली, क्रोध कहीं आकाश से गिरने वाले नहीं है । अतः इसे शान्त करने के लिए

समझ को जगाओ कि यह मैं क्या कर रहा था अब तक ? अपने को गंवाकर, मिटाकर, दुःखी कर, सता कर, जलाकर दूसरे को जलाने की कैसी मूढ़ता कर रहा था । क्रोध के बाद, गाली के बाद में तुम दंड नहीं पाते हो बल्कि क्रोध पैदा करने में ही, गाली देने में ही, उसकी तैयारी करने में ही कर्ता को दंड मिल जाता है । फिर केन्सर का भयानक रूप बनकर तुम्हें फिर से दोबारा सजा भोगना पड़ती है ।

कभी संवेदनशीलता में ऐसे डूब जाओ, जैसे तुम हो ही नहीं । न स्त्री, न पुरुष, न हिन्दु, न मुस्लिम, न जवान, न बुढ़े, न गरीब, न धनी, न काले, न गोरे, न बुद्धिमान न बुद्धिहीन । कभी प्रेम में ऐसी डुबकी लगाओ कि यह सब मिथ्या देहाध्यास भूल जाए । कोई उपाधि लेबिल न रह जाए कि मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ । तुम रह जाओ निरहंकार, निर्विकार, कोरे कागज की तरह जिस पर कुछ लिखा न हो ।

अज्ञान को स्वीकार करना ज्ञान की तरफ पहला कदम है । अज्ञान को स्वीकार करने से अहंकार की मृत्यु है। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण अन्य कोई बात नहीं है । अहंकार मिटते ही तुम हल्के हो जाओगे अब किसी प्रकार का डर नहीं रहा ।

छिपकली सोचती है छत मैं सम्भाल रही हूँ इसलिए नीचे नहीं चलती । गाड़ी के नीचे चलने वाला कुत्ता सोचता है कि मैं गाड़ी को खींच रहा हूँ । ऐसे ही व्यक्ति का भ्रम है कि मैं देह, परिवार देश को चला रहा हूँ ।

जब तक मैं बना है तब तक सब कुछ गलती–होती जाएगी । जब मैं मिट जाएगा फिर कुछ भी गलती नहीं हो सकती । जो परमात्मा से होता है वही ठीक है । जब तुम कहते हो यह मैंने किया बस यही गलत हुआ । काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा सब देह अहंकार की जड़ पर खड़े हैं । अहंकार के नाश होते ही सब देहाध्यास स्वतः मिट जाएगा ।

आत्म दर्शन

यह शब्द आत्म दर्शन ठीक नहीं है । दर्शन में तो दो चाहिये । एक देखने वाला द्रष्टा दूसरा दिखाई पड़ने वाला दृश्य । आत्मा तो द्रष्टा है वह दृश्य कभी नहीं हो सकेगा । यदि वह द्रष्टा दृश्य बन जावे तो अन्य द्रष्टा के अभाव में उसे कौन व कैसे देख सकेगा ?

कुण्डलनी जाग्रत होती मालूम पड़े, ऊर्जा प्राप्त होने लगे, ज्योति दर्शन हो तो उन दृश्यों में ज्यादा मत उलझना वह सब दृश्य है । जिसने ज्योति को, कुण्डलनी को, जगते देखा वही तुम सत्य हो । देखते रहो जो भी अनुभव हो उसमें फंसना नहीं उसे सत्य मत मानलेना । अनुभव मात्र संसार है । तुम तो इतना ध्यान रखना कि मैं द्रष्टा हूँ, जो भी दिखायी पड़ता है वह मैं नहीं हूँ । जो भी अनुभव में आता है वह मैं नहीं हूँ । मैं तो सभी अनुभवों के पार खड़ा साक्षी आत्मा हूँ । कोई भी अनुभव, दर्शन, प्राप्ति सत्य याने धार्मिक नहीं है । सब अनुभव सांसारिक है । जिसको अनुभव हो रहा है, वही धार्मिक है, वही सत्य है, वही आत्मा है, वही तुम हो । यह जो कुछ दृश्य है वह सब संसार है केवल मैं द्रष्टा ही सत्य है । जब सभी अनुभव शून्य हो जावे और कुछ भी तुमसे भिन्न अनुभव में न बचे तब तुम ही एक सत्य शेष रह जाते हो ।

अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ, अनलहक अर्थात् मैं सत्य हूँ । यह पाने की घोषणा नहीं है यह तो था ही केवल आज अपने सत्य

स्वरूप को पहचाना । ऐसा थोड़े है कि आज तुम जीव से ब्रह्म बने हो । जो पहले से नहीं थे वे आज ब्रह्म कैसे हो सकेंगे ? जो तुम नहीं हो वह कैसे हो सकोगे, जो तुम हो वही तुम हो सकोगे ।

परमात्मा का भजन अखण्ड तभी हो सकेगा जब तुम्हें यह स्मरण हो जावे कि मैं परमात्मा हूँ । तब आप की अखण्डता को कोई नष्ट करने में समर्थ नहीं । फिर सोते, जागते तुम्हें यह तो होश रहता ही है कि मैं सब समय, सब अवस्था में, सब कालों में हूँ । यह मैं का होश रहना ही परमात्मा की अखण्डता है ।

मनुष्य बाहर देखता है वह दृश्य है और देह के भीतर जो देखने वाला है वह द्रष्टा पुरुष है । दृश्य को देखना दर्शन नहीं । द्रष्टा को स्वरूप में, आत्मरूप में देखलेना दर्शन है ।

यदि पुष्पों के रंग सुगन्ध को देख, पक्षी के कलरव को सुन आंख प्रेम में न भीगे तो प्रार्थना रूखी सुखी है । आंसु खबर देते हैं कि तुम्हारा झुकना, तुम्हारी प्रार्थना हृदय से है । उगते सूरज को, चांद के सौन्दर्य को देखकर, बादलों को भटकते बर्षा करते देख, बच्चों को हंसता देख तुम्हारी आंखों में आंसु भर आवे तो प्रभु पूजा, प्रभू भक्ति हो गई ।

जो मिटना है वह दृश्य वस्तु तुम नहीं हो । जो आता–जाता है वह तुम नहीं हो । जो सदा है वही तुम हो । तत्त्वमसि । वही एक सत्य है जो न कभी आया, न कभी गया ।

तुम बोलते हो तो परमात्मा बोलता है । तुम श्वाँस लेते हो तो परमात्मा श्वाँस लेता है । वह वृक्षों में वृक्ष है, पक्षी में पक्षी है, हाथी में हाथी है , चींटी में चींटी, स्त्री में स्त्री है, पुरुष में पुरुष है । पुण्यात्मा में धर्मी है पापात्मा में पापी, अधर्मी है, बच्चों में बच्चा, बूढ़ों में बूढ़ा है । नरक में नारकीय व स्वर्ग में स्वर्गीय है । परमात्मा सार्वभौम है । उससे ज्यादा साधारण कौन होगा अणु से अणु में भी वही अनन्त में भी अनन्त वही है ?

'**अप्पो दीपो भव**' अपना दीपक खुद बनो । दूसरे की रोशनी में कब तक चलते रहोगे । उनका मार्ग पृथक् है उनकी रोशनी उनेक साथ रहेगी । तुम्हारी रोशनी में जो दिखायी पड़ेगा उस पर तुम्हारी आस्था श्रद्धा अचल रहेगी ।

जो दिखायी पड़े, अनुभव में आये उसे सपना जानो । जिस दिन कुछ दिखायी न पड़े, कुछ अनुभव में न आये, केवल साक्षी रह जाए, दृश्य खो जाए, देखने वाला ही बचे, बस तुम रह जाओ यही आत्म दर्शन, आत्म साक्षात्कार, निर्वाण, मुक्ति, सहज समाधि है । जहाँ तक तुम्हारे सामने या ध्यान में कोई दूसरा है वह सब अनात्मा दृश्य एवं मन का भोग है । मन्जिल से दूर ही जानना ।

तुम इस क्षण के बाहर परमात्मा के लिये मत जाओ । परमात्मा नित्य है, अभी है, अखण्ड है, तुम में भी है तुम ही हो। वह मिला हुआ ही है । मोक्ष तुम्हारे घर में ही है, बाहर किसी आकाश, पाताल, स्वर्ग, वैकुण्ठ में ढुंढने जैसी परिच्छिन्न एकदेशीय जड़ वस्तु नहीं है ।

याद बाहर वाले की, दूसरे की करना पड़ती है । तोते की तरह उसे रटते हैं, भूल भी बार–बार जाते हैं । राम–राम लोग रटते रहते हैं । कंठ में रहेगा किन्तु जो हृदय में चला गया वह कभी भूलाया नहीं जाता । उसकी याद होती रहती है, करनी नहीं पड़ती । याद भी दो में होती है । जहां नदी सागर में मिलगई वहां वह कैसे याद करे कि मैं गंगा थी अब सागर हो गई । यदि वहां जाकर भी याद रहे गंगा को गंगा पने की तो फिर सागर में वह मिली ही नहीं ।

अज्ञानी साधक आत्मा का परिचय इस प्रकार देते हैं कि आत्मा कोई वस्तु हो । जैसे घर के भीतर अल्मारी, रेडिओ, टी.वी. इत्यादि है । इसी प्रकार लोग कहते हैं मेरे भीतर आत्मा है । देह के भीतर परमात्मा है । जब ऐसा कहते हैं तो फिर उनके मन में आत्मा परमात्मा को खोजने की बेचैनी होती है ।

ध्यान दें ! यदि आत्मा, परमात्मा भीतर रखी वस्तु की तरह है तो उन्हें खोजने भीतर कौन जाएगा ? यदि आत्मा भीतर रखी वस्तु है तो फिर बाहार कौन गया ? न आत्मा को भीतर कहो, न आत्मा को बाहर कहो । न उसे भीतर जाने वाला कहो न बाहर जाने वाला कहो । यह निरन्तर है कहीं एक स्थल पर सरोवर की तरह नहीं है यह नदी प्रवाह की तरह निरन्तर प्रवाह रूप है ।आकाश रूप सर्व व्यापक है। यह जो बाहर–भीतर, आने वाला, जाने वाला चैतन्य है यह वही आत्मा है, यह वही परमात्मा है, यही तुम हो ।

अगर तुम भीतर डूबे तो तुम पाओगे शरीर में रहते हुए भी तुम अशरीरी अमृत आत्मा अनुभव करोगे । जहां तुमने अपने को आत्मा रूप में जाना वही तुम देह के षट् विकारों से तत्काल अनुभव करोगे। आत्मा में कोई विकार नहीं । देह में ही सब रोग विकार होते हैं ।

तुम उसी को पालो जो पाने चला है अर्थात् स्वयं को जानलो । परमात्मा को पाकर भी क्या करोगे क्योंकि तुम उससे भिन्न ही रहोगे, द्वन्द्व ही रहेगा । पाने वाले को कैसे पाओगे ?

परमात्मा के पास आने का एक ही उपाय है कि तुम यह समझलो मैं नहीं हूँ । इसी प्रकार तुम अपने पास हो सकोगे । जितना मैं मजबूत होगा उतना ही तुम अपने से दूर रहोगे वहां तक तुम भटकोगे । इधर मैं गिरा कि तुम्हें अपनी वास्तविकता से मिलन हुआ । पहली बार तुम्हारा अपने से साक्षात्कार होगा ।

तुम गुरु या परमात्मा की कितने ही सुन्दर ढंग से स्तुति करो प्रार्थना करो, गीत गाओ, नाचो इससे कुछ नहीं होगा । तुम अपने में कब लौटोगे । स्तुति में समय खराब न करो । बहुत स्तुति, मन्दिर, मस्जिद प्रार्थना पूजा कर चुके । क्या पाया ? हाथ खाली के खाली । अब भीतर के मन्दिर में जाओ वहां का अनहद नाद जगाओ । असली मन्दिर के घंटा सुनो, जो तुम्हारे भीतर सोया है उसे जगाओ ।

अपनी तलाश करो । मैं कौन हूँ । स्वयं को जानो तो ही परमात्मा को जान सकोगे, क्योंकि परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है । तुम्हारा होना है । तुम्हारा अस्तित्व है । तुम किसी का भी सहारा पकड़ो तो भटकोगे । वह एक दिन छूटेगा । गुरु वही जो जिज्ञासु को सब ओर से हटा स्वयं पर लौटा दे । गुरु परमात्मा में, अपने में प्रवेश का द्वार बनता है दीवार नहीं बनता है वह अपने में रोकता नहीं है ।

मैं सदा स्वयं में स्थित हूँ, मैं सदा निर्विभाग हूँ अर्थात् कोई भेद, कोई विभाजन मैं में नहीं । कोई खण्ड मैं में नहीं । न प्रवृत्ति है कोई, न निवृत्ति है कोई । न किसी से लगाव है, न किसी से दुराव है । मुक्त हो गये सब द्वन्द्व के जाल से । न बन्धन है, न मुक्ति । जब गुरु शिष्य नहीं तो कौन मेरे लिये उपदेशक होगा, कौन वेद शास्त्र होगा । कोई नहीं ।

उस चेहरे की खोज करो जो तुम्हारा इस शरीर के जन्म के पहले था जो चेहरा देह की मृत्यु के बाद रहता है । जन्म–मृत्यु के मध्य वाला चेहरा तो पिता माता से प्राप्त हुआ है । यह तुम नहीं कि यह तुम्हारा नहीं ।

मैं व तू एक ही सिक्के के दो पहलू है । तू के कारण मैं खड़ा है ज्ञानी के लिये 'तू' मिट जाता है । और तू के मिटते ही मैं व हम सर्वनाम भी गिर जाता है । 'तू' गिर गया तो मैं बच नहीं सकता । किसको कहेंगे 'मैं' जब कोई तू सामने ही नहीं । मैं का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता है । मैं व तू साथ–साथ बचते हैं । तुम कैसे कहोगे मैं हूँ जब तक कि तुम्हारे सामने कोई दूसरा न हो ? जब भक्त मिट गया तो भगवान किसके लिये बचेगा ? भगवान भी शून्य हो जाता है ।

अगर कोई ज्ञानी कहता है –'मैं' तो समझना अभी इसकी दृष्टि से तू गया नहीं है । तू की छाया ही है 'मैं' यदि कोई तुम्हारे दृष्टि में 'तू नहीं तो मैं' कैसे हो सकेगा । मैं पीछे आता है पहले तू आता है तू के चले जाने पर मैं चला जाता है ।

जहाँ एक रूप का ज्ञान हो गया वहाँ अशान्ति का स्थान नहीं रहता । अशान्ति अनेकता की छाया है । और जिसके लिये जगत दर्पण हो गया सब तरफ तुम ही उस में झलकते हो तुम्हारे सिवा कोई दूसरा नहीं, तो भय किसका, ग्रहण–त्याग किसका । जन्म व मृत्यु एवं सुख–दुःख भी तुम ही हो, फिर तू व मैं भी गया । दृश्य गया तो द्रष्टा कहाँ रहेगा । मैं यह हूँ, यह मैं नहीं हूँ इस प्रकार के विभाग को छोड़ दो । सब आत्मा मैं ही हूँ । जो दिखाई पड़ता है वह सब मेरी छाया ही है । ऐसा निश्चय करके किसी के साथ बन्धो नहीं । अच्छे–बुरे का निर्णय मत लो । तुम विभाग करना छोड़ दो एवं उसे देखना शुरू करदो जो सब में अविभाज्य है । जो आत्मा है वही तुम सब रूप में हो ।

जब प्राणों को भूख–प्यास लगती है आप उसे अनुभव करते हैं फिर जल–अन्न देकर उसे शान्त हुआ भी देखते हैं । न आप भूखे–प्यासे होते हैं न खा–पीकर शान्त होते हैं । पीड़ा प्राण को हुई थी तो उसे भोजन पानी देकर शान्त किया । शरीर में रोग था, अंगों में रोग था उनको औषध उपचार द्वारा ठीक किया । हर क्रिया में यह होंश रहे कि यह सब देह, इन्द्रिय, प्राण, मनादि की अवस्थाएं हैं, मैं उनसे दूर हूँ, पृथक् हूँ केवल जानने वाला, अनुभव करनेवाला, देखने वाला साक्षी–आत्मा हूँ । **होंश को किसी अवस्था में खोने न दो । अपने को प्रत्येक क्रिया से, अवस्था से अलग रखो ।** देह के साथ बिलकुल न जुड़ो, तो अन्तिम घटना जो मृत्यु की घेटगी उस समय भी तुम उससे दूर रहोगे । देख पाओगे कि मौत आती है शरीर को, मुझे नहीं । देह वस्त्र जीव बदलता है मृत्यु होती नहीं । देह एक वस्त्र है जिसे जीव कर्मानुसार धारण करता है । ज्ञानी की दृष्टि में वह स्वयं नहीं मरता, क्योंकि वह अपनी दृष्टि में आत्मा है । अज्ञानी की दृष्टि में मैं आत्मा हूँ ऐसा बोध नहीं है । अज्ञानी की दृष्टि में ज्ञानी मरता है । क्योंकि अज्ञानी अपनी दृष्टि में अपने को व ज्ञानी को भी शरीर

मानता है इसलिये उसकी दृष्टि में दोंनों ही मरते हैं । जो है वह सदा रहेगा जैसे आत्मा । जो नहीं है वह नहीं रहेगा, जैसे शरीर ।

साधक तीर्थ यात्रा करता है, पूजा–पाठ करता है, व्रत–उपवास करता है केवल अहंकार को बढ़ाने । नदी सागर में मिल जावे तभी शान्त होती है । तुम अपने व्यष्टि अहंकार को समष्टि चैतन्य में मिलादो उसी क्षण आनन्द सागर में डूब जाओगे ।

जो भी अच्छा–बुरा कर्म करते हो उस चैतन्य में डूबकर ही करते हो। उस चैतन्य अन्तरात्मा को साथ लेकर ही करते हो ।

पत्थर, मूर्त्ति, चित्र जो किसी चित्रकार या मूर्तिकार के मन के खिलौने हैं उनके सम्मुख झुक जाते हैं किन्तु परमात्मा के बनाये सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, पौधे, पुष्प, फल, जल को देख पाषाण हृदय वाले मनुष्यों के हाथ नहीं जुड़ पाते न उनकी गर्दन झुक पाती है ।

तुम जहां हो, जैसे हो, सत्य में ही खड़े हो । सत्य तुम्हारा स्वभाव है, हर श्वांस प्रश्वांस में वही आता–जाता है । वही श्वांस को लेता है । परमात्मा तुम्हारे भीतर है ऐसा न कहो । परमात्मा के भीतर ही तुम हो । वही है तुम्हारा देह, मन, प्राण, रक्त । उसे कभी खोया नहीं है केवल विस्मरण किया तो स्मरण में लाया जा सकता है । सत्य को पकड़ना नहीं, असत्य को छोड़ना है ।

सत्य की खोज कहना भूल है । कौन खोजेगा सत्य को सत्य के अभाव में । सत्य वहीं है । मिला हुआ ही है । मार्ग से बाधांए हटाना है । पानी का झरना नीचे छिपा है, चट्टान तोड़ना है, मिट्टी हटाना है, पानी लाना नहीं है। सूर्य को लाना नहीं, बुलाना नहीं, प्रार्थना करना नहीं, खोजना नहीं । सूर्य सम्मुख प्रकाश युक्त मौजूद है, केवल उस ओर तुम्हें आंखे करना है अथवा बायलों के हटने की अपेक्षा है । उसी के प्रकाश में ही तुम सब कुछ देख रहे हो । इसी तरह परमात्मा मौजूद है केवल बाहर से दृष्टि को उस ओर मोड़ देना

है जहां से सब ओर सबको देखा जा रहा है । परमात्मा को खोजना नहीं, वह कभी खोया ही नहीं, वह सर्वदा मिला हुआ ही है । उसे पाने के लिये प्रार्थना, याचना की जरूरत नहीं, किसी देश विशेष में जाकर खोजने की जरूरत नहीं, किसी समय विशेष में मिलने वाली वस्तु नहीं, उसका कोई रूप विशेष नहीं । परमात्मा असाधारण वस्तु नहीं । परमात्मा से साधारण कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं है । परमात्मा को साधारण रूप में स्वीकार करलें तो वह अभी तुम्हारे श्वांस में चल रहा है तुम्हारे रक्त में बह रहा है, तुम्हारे भीतर धड़क रहा है ।

जैसे – आंख पर चश्मा चढ़ा है किन्तु भ्रम से उसी चश्में को वह खोजता है इसी तरह परमात्मा चैतन्य भीतर विराजमान है एवं उसी परमात्मा को चित्र, मूर्ति, ध्यान–समाधि में खोजा जा रहा है । 'कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे वन माहि' । जैसे कलम कान पर फंसा रखी है एवं कलम खोजने में लगे हैं ।

श्वाँस भीतर जाने व बाहर आने में एक क्षण वह ठहर कर दिशा बदलता है । नींद आई नहीं, जागरण जा चुका है जब तुम नहीं कह सकोगे कि जागा हुआ हूँ या सो चुका हूँ बीच में खड़े हो इसी को सन्ध्या काल कहते हैं यही वह क्षण है निर्विचार का, परमात्मा के साक्षात्कार का । डूब जाओ तो पाने योग्य है वह पा लिया । जो जानने योग्य है, वह जान लिया हो जाता है ।

तुम्हारे पास कौनसी ज्योति है जिससे तुम संसार की वस्तुओं, व्यक्तियों को देख पाते हो ? दिन में सूर्य, रात्रि चन्द्रमा किस प्रकाश में देख पाते हो । नेत्र ज्योति उस समय काम करती है । नेत्र बंद करलेने पर किससे भीतर ही भीतर देखा जाता है ? वह बुद्धि है, उस बुद्धि को किसने देखा । उसे मैं स्वयं ज्योति ही देखता हूँ । हे प्रभो ! आप भी परम ज्योति है और मैं भी वही हूँ ।

ध्यान क्या है ?

ध्यान किया नहीं जाता, ध्यान तो स्वतः होता रहता है जो किया जाता है वह ध्यान नहीं । वास्तविक ध्यान तो यह है कि जो हो रहा है, तुम उस घटना को शान्त होकर देख रहे हो । तुम्हारा कोई उस घटना के प्रति अस्वीकार भाव नहीं । एकाग्रता ध्यान नहीं है ; ध्यान सर्व स्वीकार अवस्था का नाम है । पक्षी गाएंगे, आवाज करेंगे, टी.वी, ट्रान्जिस्टर, टेपरेकर्ड चलाएंगे, मशीने चलेंगी, ग्राइन्डर चलेगा । सब होता रहेगा । तुम वहाँ केवल शून्यवत बैठे रहोगे । सब तुम्हें दिखाई व सुनाई पड़ेगा किन्तु तुम कोई अपना निर्णय नहीं लोगे । ध्यान यानी तुम्हारे और समस्त समस्याओं, घटनाओं के बीच समरसता रहेगी जो है स्वीकार है । जो हो रहा है, शुभ है । कोई विरोध नहीं । यही आस्तिकता है, यही ध्यान है । जिस ध्यान में कोई बाधा पड़े, वह ध्यान नहीं वह तो अहंकार का खेल है । क्योंकि अहंकार को बाधा पड़ती है । तुम वहां अकड़ कर बैठे थे ध्यानी बने, कुछ तुम्हें वहां मिला नहीं केवल दिखावा हो रहा था ध्यान का और कुछ बाहर से बात होते सुनाई पड़ी, बच्चे रोते, शोर करते सुनाई पड़े कि तुम आगये बाहर, यह ध्यान नहीं हो रहा था । आत्म बोध में कोई दूसरा होता ही नहीं इसलिये प्रभावित अप्रभावित का कोई अर्थ नहीं । जो होता है, होता है ।

ध्यान का अर्थ है जो होगा होने देंगे । बच्चा रोयेगा उसे रोने देंगे, कुत्ता भोंकेगा उसे भोंकने देंगे । हम हैं कौन इस विराट् के प्रवाह में बाधा डालने वाले कि कुत्ता न भोंके, पानी न गिरे, कौवे कांव–कांव न करे । हवाई जहाज न उड़े । ''मैं कौन हूँ रोकने वाला'' । मैं केवल देखता रहूँगा, जो कुछ घटता जावेगा मेरी कोई मांग नहीं है तो मुझे किसी से विक्षेप नहीं होगा ।

ध्यान तो वही है जो कोलाहल में भी खण्डित न हो, ध्यान तो वही है जो बीच बाचार में भी अखण्डित रहे । तुम्हारे भीतर कुछ हलचल न हो तुम चुप चाप साक्षी बने रहो यही है सच्चा ध्यान ।

ध्यान, समाधि में ज्यादा अन्य कुछ भी नहीं है, केवल दृश्य से दृष्टि लौट द्रष्टा पर आजाती है तो हो गया ध्यान, हो गई समाधि ।

ध्यान का मतलब है बस तुम अकेले रह जाओ । वहां कोई भी न हो । जब तू गया तो मैं भी गया । तू को छोड़ना याने परमात्मा को छोड़ना फिर मैं अपने आप छूट जाता है ।

ध्यान तो एक अलग बिन्दु है, वह तो जीवन में साक्षीभाव को स्थापित करने से उपलब्ध होता है ।

जब तक करना है तब तक ध्यान नहीं कहलाएगा । द्रष्टा हो जाना, साक्षी हो जाना ही ध्यान है, साक्षी हो जाना ही समाधि है । साक्षी का साक्षी नहीं होता । कर्तापन छूट जाना ही अहंकार शून्य होना है और इसी को ध्यान कहते हैं।

ध्यान कोई ऐसी क्रिया नहीं जो सुबह उठकर थोड़ी देर कर लिया । ध्यान तो जीवन है, ध्यान में ही प्रत्येक कर्म होते रहते हैं । ध्यान का मतलब साक्षी भाव में जागरण । धर्म का सम्बन्ध साक्षी भाव से है । बाह्य आदर्श संस्कृति का नाम धर्म नहीं है ।

ध्यान करना समाधि करना ही बन्धन है । ध्यान समाधि तो तुम्हारा नित्य स्वभाव है । जब तक ध्यान करना कर्तव्य रूप लगे तब तक जानना अभी तुम्हारी स्थिति कच्ची है ।

ध्यान उनके लिये है जिन्हें साक्षी भाव समझ नहीं आया है । ध्यान से साक्षी पर, कर्ता से साक्षी पर छलांग तो लगाना ही होगा । साक्षी अन्तिम मन्जिल है । विश्राम, शान्ति वहीं है ।

ध्यान का सुत्र पूरे समय प्रत्येक क्रिया की मध्य से गुजरता ही रहना चाहिये । हमसे छूटे ना । जैसे पुष्पमाला में सूत्र प्रत्येक पुष्प से होकर दूसरे पुष्प में चला जाता है । सूत्र अनुस्यूत है पुष्प भिन्न–भिन्न है । इसी प्रकार दैनिक हर घटना–स्नान करते हो या ध्यान करते हो, भोजन बनाते हो या भोजन ग्रहण कर रहे हो । अपने घर में हो या बाजार में, भीड़ में हो या एकान्त में भोजन हो या शयन, सुख हो या दुःख, रोगी हो या निरोगी, धन हो या निर्धन, सफल हो या विफल, सम्मानित हो या अपमानित, प्रेम मिले या घृणा, जीवन हो या मृत्यु सारी घटनाओं के मध्य ध्यान बना रहे कि मैं यह सब द्वन्द्व नहीं हूँ । मैं इन सब को जानने वाला इन से पृथक् असंग द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ ।

ध्यान करने की अवस्था नहीं है । ध्यान करना है, करने जा रहे हैं या कर रहे हैं । तब तक तुम कर्ता बने रहोगे । यह ध्यान, समाधि लगाने का प्रयास ही जीव के बन्धन का कारण है ।

बिना साधन किये विचार मात्र से मुक्ति का अनुभव करलेते हैं वे जीव धन्य है । जब तक ध्यान का अभ्यास छूटा नहीं तब तक तुम्हारी अवस्था कच्ची है, तुम स्वरूप में स्थित नहीं हुए हो । ध्यान अन्तिम चरण नहीं है । जब तक साक्षी भाव नहीं जगा है तभी तक ध्यान जरूरी है । ध्यान करते–करते जब धीरे–धीरे मन शान्त हो जायगा तब साक्षी भाव अर्थात् समाधि उपलब्ध हो जायगी, फिर ध्यान करने की जरूरत नहीं । ध्यान परिधि से छलांग तो लगानी ही पड़ेगी । साक्षी केन्द्र है । ध्यान करना है, ध्यान करूंगा, ध्यान करने में कर्ता भाव जीवित है । अतः कर्ता से उठो एवं साक्षी में जागो । जब

ध्यान से चित्त शान्त हो जाएगा तब साक्षी भाव में उतरना सुगम हो जावेगा । अन्तिम घटना तो साक्षी की ही है । एक दम अन्तिम सोपान पर छलांग लगा सको तो शुभ ही है अन्यथा ध्यान करते रहना उचित होगा ।

ध्यान करना उन साधकों के लिये कर्तव्य रूप है जिन्हें आत्यान्तिक बात अर्थात् साक्षी भाव, द्रष्टा भाव समझ में नहीं आया है । जिसको अभी ध्यान में भी मन लगता नहीं वह साक्षी भाव को क्या समझेगा ? ध्यान में मन न लगने वालों को स्वाध्याय करते रहना चाहिये । स्वाध्याय होने लगे तब वह ध्यान करने में सफल हो पाता है । इस ध्यान के कर्तापन से भी तुम्हें तब छलांग लगा लेना है जब ध्यान सिद्ध हो जाए अर्थात् आत्म भाव जाग जावे तब उसे ध्यान के कर्तापन से मुक्त करने के लिये कहा जाता है कि अब ध्यान को भी छोड़ो यह भी दृश्य है, इसके भी तुम द्रष्टा, साक्षी आत्मा भिन्न हो ऐसा निश्चय करना ही अन्तिम चरण है । तब उससे कहा जाता है कि ध्यान, धारणा, समाधि, कुण्डलनी जाग्रत से कुछ होने वाला नहीं है । अब कर्ता से साक्षी भाव में आ जाओ ।

ध्यान तो न करने की अवस्था है । ध्यान करने में कर्ता मौजूद रहता है । यही बन्धन का, पुनर्जन्म का कारण है ।

लोग ध्यान को कठिन बताते हैं, वे ध्यान का मतलब नहीं समझे । ध्यान हमारा स्वरूप है । स्वरूप से ज्यादा सरल संसार में कुछ नहीं । स्वरूप को पाने हेतु साधन नहीं, समझ चाहिये । होश चाहिये । बेहोंशी का नाम ध्यान नहीं, जड़ता का नाम ध्यान नहीं कुछ कल्पनाओं को देख लेना ध्यान नहीं । **एकाग्रता भी ध्यान नहीं ।**

ध्यान का मतलब मन निर्विषय हो जाना । जब तक मन में किसी प्रकार का अहंकार मौजूद है तब तक ध्यान नहीं । ध्यान का मतलब साक्षी, अकर्ता भाव में जीना ।

जब तुम ध्यान करने का नियम बनाते हो तो धीरे–धीरे तुम तुम्हारे शरीर, प्राण, इन्द्रिय एवं मनादि दृश्य रूप में प्रतीत होने लगते हैं और तुम इन समस्त दृश्यों के अपने को द्रष्टा जानने लग जाते हो । इस प्रकार ध्यान करते–करते जब द्रष्टा भाव परिपक्व हो जाता है तब तुम अज्ञान अवस्था में जैसे अपने को जिस प्रकार का मानते जानते चल रहे थे उसी प्रकार नाम, जाति, सम्बन्धी, पद एवं उपाधिवान नहीं जान सकोगे ।

ध्यान करते–करते तुम्हारे मन में देह के प्रति अहंभाव शून्य हो जाता है फिर तुम अपने को अज्ञान अवस्था में जैसा मान कर चल रहे थे कि मैं गोरा, काला, स्त्री–पुरुष, जवान, बूढ़ा, जन्म–मृत्यु रूप हूँ अब ऐसा नहीं जान सकोगे ।

ध्यान मन की मौत है । साक्षी मन का अमन होना है । '**विचारेन मोक्षो भवति, तस्माद् सर्वदा विचारेन**' । जो स्वयं में स्थित हुआ वही स्वस्थ हुआ । नाटक देखते रहना । किसी भी अभिनेता अभिनेत्री के अभिनय में तादात्म्य मत करना । मन कहीं भी जाये तुम देखते रहना । उसका संग न करना । उसे रोकना नहीं ।

लोग ध्यान, समाधि एवं कुण्डलनी जाग्रत हेतु सारे जीवन प्रयत्न करते रहते हैं किन्तु कुछ हाथ नहीं लगता । तुम अपने में जाग जाओ । मन के प्रति जाग जाओ । सब स्वतः होते चला जायगा जो–जो जरूरी है । वह सब समाप्त होता चला जायगा जो जरूरी नहीं है । तुम केवल अपने साक्षी भाव में जागते रहना ।

मन की मेडीटेशन की झाड़ू नित्य लगाना । हर श्वांसों में उस अनहद नाद के संगीत को सुनते रहना ।

अपने मन, बुद्धि को आत्म भाव में, द्रष्टा साक्षी भाव में समाहित करना ही ध्यान समाधि है ।

परमात्मा कैसा है ?

तुम ईश्वर को, परमात्मा को, आत्मा को दृश्य की तरह मत सोचना, ईश्वर दृश्य नहीं बन सकता । वह सबको जानने वाला है, उसे कोई नहीं जान सकता। जैसे–जैसे तुम द्रष्टा बनने लगे कि तुम ईश्वर के समीप सरकने लगे । ईश्वर सबका द्रष्टा है । उसके अतिरिक्त यहां दूसरा अन्य कोई नहीं । ऐसा जो निश्चय पूर्वक जानाता है वह पुरुष परमात्मा को जानता है।

परमात्मा की प्यास होना ही यह प्रमाणित हो जाता है कि परमात्मा कहीं है । अगर परमात्मा न होता तो उसकी प्यास, उसका विरोध करना भी किसी के लिये सम्भव नहीं होता ।

हर दृश्य द्रष्टा की खबर दे रहा है । हम अन्धे हैं जो सूरज को देख परमात्मा के प्रति आकर्षित नहीं होते । पुष्प के रंग सुगन्ध परमात्मा की ही प्रतिमा है, परमात्मा की याद दिला रहे हैं। जैसे चित्र व्यक्ति की याद दिलाता है, असली रूप की पहचान करा रहा है । इसी प्रकार यह समस्त दृश्य प्रकृति, द्रष्टा परमात्मा का स्मरण करा रहा है ।

परमात्मा से कोई भी एक क्षण भी भिन्न नहीं हो सकते । जब पाप किया तब उसीने किया है । जब पुण्य किया है तब भी उसीने किया है । जब चोरी की तब भी उसीने की। जब साधु बने तो भी वही

था । एक क्षण को भी उससे भिन्न होने का उपाय नहीं । ऐसा कोई निर्णय ही नहीं जो उसका न हो । इस प्रतीति का, इस अनुभव का नाम, इस साक्षात्कार का नाम ही समर्पण है । तुम नाहक बीच में मत पड़ो । बीच में मत आओ । जो भी हुआ है, जो भी हो रहा है, जो भी होगा उसी से है, उसी में है । इस विराट चैतन्य सागर की हम लहरे मात्र है । लहरे सागर से भिन्न नहीं हो सकती ।

परमात्मा स्वयं निराकार न होता तो नाना रूप में प्रकट न हो पाता वह स्वयं इन विभिन्न आकृतियों के बीच निराकार है । इतने आकार भेद एक के तभी हो सकते है जब वह स्वयं निराकार हो । बहुत रूपों में परमात्मा प्रकट होते हुए भी अज्ञानी अन्धे पूछते हैं परमात्मा को हम कहाँ देखे ? सब तरफ से उसने ही तो सबको घेरा है जहां जाओ वही तो सामने से आता है । जिससे बात करो उसीसे बात हो जाती है । देखो सूरज को तो उसकी ही रोशनी एवं तपन, देखो चन्द्रमा को तो उसीकी ही शीतलता, देखो अमावास्या की रात तो उसीका घना अन्धकार, सुनो पक्षियों का चहचहाना तो उसी का संगीत, देखो पुष्पों को तो उसी की सुगन्ध व उसीका सौन्दर्य । फलों में उसीकी मधुरता, नीम में उसीकी कटुता, अग्नि में उसकी ही ज्वलन्तता, बर्फ में उसी की शीतलता, इतने–इतने रूपों में वह सर्वत्र प्रकट हो रहा है, फिर भी अन्धे उसे देख नहीं पा रहे हैं फिर भी चूकते चले जा रहे हैं जबकि सबको सभी समय वही स्पर्श कर रहा हैं । जैसे सभी जानबुझ कर आंख बन्द कर चल रहे हैं । दुर्भाग्य होता मनुष्य का अगर परमात्मा का एक ही रूप होता, एक ही जगह परमात्मा होता तो इतने विराट् संसार में मनुष्य उसे कभी नहीं खोजपाता खोजते–खोजते ही मनुष्य के प्राण निकल जाते । कोई भी साधक वहां तक न पहुंच पाते ।

तुम परमात्मा को खोज रहे हो । वह खोज ऐसी ही है, जैसे कोई आदमी मान लेता हो कि उसकी पत्नी विधवा होगई और वह

व्यक्ति जिंदा बैठा अपनी पत्नी के विधवा होने का दुःख मना रहा है । परमात्मा को खोया कब है ? तुम हो तो परमात्मा है । तुम्हारा जिंदा रहना ही परमात्मा के होने का प्रमाण है । अगर वह न होता तो तुम एक कदम भी नहीं चल पाते । तुम्हारे रहते परमात्मा न हो यह बात असम्भव है जैसे तुम्हारे रहते तुम्हारी पत्नी कभी विधवा नहीं हो सकती । परमात्मा पाया हुआ ही है केवल स्मरण नहीं है । तुम उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकोगे । वह तुम में श्वांस लेता है । वही तुम में जागता है । उसको तुमने पूरी तरह अपने जीवन में पाया हुआ है वह पूरा तुम में समाया हुआ ही है । इसीलिये तुम में होंश है । परमात्मा अद्वय है । जब वह होता है तब मनुष्य नहीं होता । मनुष्य होकर परमात्मा से मिलन नहीं होता। परमात्मा से मिलना अपनी महामृत्यु से मिलना है ।

परमात्मा के बारे में जो तुम जानते हो उससे परम सत्य का, परमात्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है । परमात्मा के सम्बन्ध में तुम्हारे प्रत्येक अनुभव को वेद नेति–नेति कह कर अस्वीकार कर देता है अर्थात् जो तुम जानते हो कि परमात्मा ऐसा–ऐसा है वह सब तुम्हारे मन की कल्पना है । जैसे बृहदाकाश को तुमने घर की खिड़की, झरोखे या द्वार की चोखट से देखा तो आकाश तुम्हें उतना ही आकार वाला दिखाई पड़ता है किन्तु आकाश उतना ही नहीं है, परमात्मा अज्ञेय है, परमात्मा अप्रमेय है, परमात्मा अगोचर है । सत्य सदा सर्व से अपरिचित है । जिस से तुम्हारा परिचय हो जाता है वह तो मर ही गया । जिस को तुमने जानलिया उसकी सीमा आगई जिसकी सीमा पर तुम पहुंच गये तब उसका अनन्त स्वभाव नहीं रहा । अन्त वाला पदार्थ परमात्मा नहीं हो सकता । परमात्मा के लिये सब जानना, सब धारणांए तुम्हारे मन की कल्पना है ।

तुम परमात्मा को खोज रहे हो वह खोज ऐसी ही है, जैसे कोई पुरुष मानलेता है कि मेरी पत्नी विधवा हो गई और पुरुष दुःखी हो रो रहा

है और पुरुष स्वयं जिन्दा बैठा है । परमात्मा को भी लोग खोज रहे है प्रार्थना कर रहे हैं, रो रहे हैं किन्तु उस परमात्मा को तुमने खोया कब ? वह परमात्मा अभी है, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो तुम स्वयं हो । यदि वह न होता तो तुम कभी नहीं हो सकते थे । तुम्हारे होने में ही परमात्मा समाया है । जैसे बर्फ के होने में ही जल समाया हुआ है । मिश्री के होने में ही चीनी समायी हुई है । तुम्हारे मैं में ही परमात्मा समाया हुआ है । तुम्हारे में यह असम्भव है कि परमात्मा न हो । तुम उसके प्रमाण हो, तुम उसके हस्ताक्षर हो । तुम्हारे रहते तुम्हारी पत्नी विधवा नहीं हो सकती । इसी तरह तुम्हारे रहते परमात्मा कभी न दूर हो सकता है न कभी खो सकता है । एक एक पत्तियों में उसकी हरियाली है, एक एक पक्षी में उसी का स्वर मुखरित हो रहा है । एक–एक पुष्प में उसकी ही सुगन्ध सुवासित हो रही है, उसीका सौन्दर्य झलक रहा है ।

जरा मान्यताओं से आंख खाली करो, चश्मा हटाकर देखो । हिन्दु, मुसलमान, मन्दिर, मस्जिद व गीता, कुरान को मन से जरा पीछे हटाकर देखो की दिवारों को हटाकर देखो तो पहली बार तुम्हें वह सब जगह से झांकता हुआ दिखाई पड़ेगा । कण–कण रूप में वही तो विराजित हुआ है ।

भोजन, पानी, पवन, प्रकाश हमें रोज शक्ति दे रहे हैं । इसका उपयोग अच्छी तरह कर लेना अन्यथा यह शक्ति मुक्ति के बजाय बन्ध में खड़ा कर देगी । फूल न बनने दिया तो कांटों में शक्ति बदल जायेगी । प्रेम में नहीं परिणित हुई तो यह शक्ति काम में बदल जायगी । करुणा में नहीं परिणित हुई तो क्रोध में रूपान्तरित हो जायगी । यदि प्रार्थना में परिणित न हुई तो निन्दा में बहने लगेगी । यह संगृहित नहीं रहेगी । कल फिर नयी उर्जा आरही है । जगह खाली करना पड़ेगी ।

यदि तुमने परमात्मा को दूसरे पुरुष की तरह प्राप्त कर भी लिया तो एक दिन वह निश्चित ही छूट भी जाएगा । सब दूसरे छूटजाते

हैं । धन पालोगे छूट जाएगा, यश, प्रतिष्ठा, बल, पद, सौन्दर्य, पति–पत्नी, पुत्र, मित्र, मकान, मन्दिर बना लोगे छूट जाएगा । जो पर है वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है । अपने को पालेना एक मात्र जीवन का लक्ष है । सिर्फ अपना होना कभी नहीं छूटता है । परमात्मा हमारा स्वभाव है ।

ईश्वर अगर कोई व्यक्ति होता तो अभी तक मर गया होता । व्यक्ति तो मरेंगे ही । थक गया होता, इन भिखारी दुनियां को दे दे कर । ऊब गया होता । सोचो भी थोड़ा अखण्ड नाम यज्ञ दिन रात सब ओर चल रहा है । निरन्तर जप, प्रार्थना हो रही है उसे कोई समय ही नहीं अपने विश्राम के लिये । लोग दो दुकान चलाते ऊब जाते हैं फिर जिसे सारी दुनियां चलाना पड़ रही है उसका क्या हाल होता । न्यायाधीश भी ६० वर्ष में अवकाश प्राप्त हो जाता है । ईश्वर को तो ऐसा भी अवसर नहीं मिल पाता । पागल हो गया होता अब तक किन्तु वह कोई शरीर धारी व्यक्ति नहीं है ।

परमात्मा को पाने में मनुष्य का होना, अपना होना ही बाधा है । कोई मनुष्य रहकर परमात्मा को नहीं पा सकेगा । बूंद रहकर सागर को नहीं पा सकेगी । जब हम मिट जाये तभी परमात्मा प्रकट होता है । जिसने जाना, उसने यही जाना कि '**जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं**' । **प्रेम गलि अति सांकरी, ता में दो न समाहि** ।

परमात्मा हमारा स्वभाव

परमात्मा हमारा स्वभाव है । उसे पाने हेतु यात्रा पर नहीं निकलना है । परमात्मा सहज है, स्वयं ही हैं फिर कौन किसे ढूंढने कहाँ जावे ? सहज का अर्थ हमारा अपना स्वभाव अग्नि की उष्णता की तरह भिन्न नहीं । सहज का मतलब बहुत कम कठिनाई से मिल जाने जैसा भी नहीं समझ लेना । सहज का मतलब तुम अपने को समझना है । अपने अतिरिक्त विश्व में कुछ सहज नहीं है । संसार में सब साधन साध्य एवं कठिन है । सहज का मतलब न दूर से होता है, न भिन्न से । सहज अर्थात् स्वयं ।

परमात्मा पाने हेतु बाहर से अपने पर लौट आना है । यात्रा दूरस्थ स्थान, व्यक्ति के लिये होती है । परमात्मा सभी जीवों के हृदय में विराजित है । जैसे यात्रा कर घर आ जाते हैं तब सब वाहन, सवारी साधन छूट जाते है इसी तरह आत्मभाव जब जाग्रत हो जाता है तब सभी प्रकार के साधन पूजा, पाठ, मंत्र, माला, ध्यान, समाधि, योग, यज्ञादि छूट जाते हैं । कहीं जाना नहीं । परमात्मा यहाँ, अभी और तुम हो । क्योंकि वह अखण्ड होने से सब देश, काल एवं वस्तु रूप है ।

परमात्मा व तुम्हारे बीच किसी प्रकार की रुकावट नहीं । किसी मंत्र, माला, पूजा, आरती, होम, यज्ञ, ध्यान, समाधि, व्रत, उपवास, तप, तीर्थ की जरूरत नहीं । परमात्मा को पाने के लिये समझ चाहिये । पाने का मतलब प्राप्त परमात्मा का अनुभव जगाने के

लिये बुद्धि की, विचार की जरूरत है । परमात्मा दूर होता तो यात्रा करने से मिल जाता । स्वयं ही हो तो यात्रा कैसे कर सकोगे, पुकार कैसे सकोगे ? ध्यान किसका करोगे । तुम अपने अहंकार को खो दो तो परमात्मा मिला हुआ ही पाओगे । अहंकार ही परमात्मा के होने में बाधा है ।

सत्य भीतर विद्यमान है, उसे बाहर से मन मोड़ भीतर की ओर जागकर जान लो । उसे पदार्थ की तरह बाहर मत खोजो । परमात्मा खोज कर मिल जावे तो जानना वह परमात्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है । परमात्मा तो तुम्हारे मन, बुद्धि, आंख, कान के पीछे खड़ा सब देख, सुन रहा है ।

सम्पत्ति, खजाना तुम्हारे भीतर है और तुम उसे बाहर खोज रहे हो इसलिये दुःख भोग रहे हो । जिसे कभी किसी ने खोया नहीं उसे तुम बाहर कैसे खोज सकोगे ? ''**कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे बन माही**'' । साधन करने से जो मिलेगा वह अनित्य संसार होगा । बिना किये जो पहले से ही है वह नित्य परमात्मा है, वही तुम हो ।

विशिष्ट होने की चेष्टा ही अहंकार का भोजन है । साधारण होना ही अहंकार की मृत्यु है । विशिष्ट होने की कोशीश मत करो । असाधारण होना ही स्वरूप से च्यूत होना है । परमात्मा विशिष्ट नहीं है । पण्डित, ज्ञानी, महात्मा, त्यागी मत बनो । कर्ता मत बनो, साक्षी रहो । विशिष्ट बनने की चेष्टा ही बन्धन है । तुम परमात्मा से कभी पृथक् हुए ही नहीं । बिना साधन के मिल सकते हैं बल्कि मिले हुए ही हो । समस्त मान्यताओं, अहंकारों की कब्र बनाकर उसके साक्षी रहो । मेरा त्याग जैसा किसी का नहीं, मेरा ज्ञान जैसा किसी का नहीं । मेरे जैसा कोई महात्मा नहीं । मैं सर्व त्यागी, मैं अपना भोजन स्वयं बनाकर खाता हूँ, मैं उच्च ब्राह्मण हूँ । ऐसा किसी प्रकार का अहंकार मत रखो ।

सोचो–कौन तुम्हारे इस शरीर रूप मिट्टी के दीपक में ज्योति प्रकटा रहा है ? यह तुम्हारे चेतना, तुम्हारा होंश यह परमात्मा की ही तो किरण तुम्हारे भीतर है, तभी तो यह तुम्हारा शव शरीर क्रियाशील हो रहा है । और तुम पूछते हो परमात्मा कहाँ मिलेगा ? पर यह तो बताओ परमात्मा कहाँ नहीं है, क्या नहीं है, कब नहीं है ? आंख पर पर्दा पड़जाय, पलको का तो विराट् सूर्य छिप जाता है कोई आंख में पर्वत नहीं डालना पड़ता एक छोटी सी मिट्टी की किर किरी आंख में पड जाये तो सूर्य को छिपादेती है इसी तरह देह भाव के कारण ही विराट्, अखण्ड परमात्मा होते हुए भी प्रतीत नहीं होता ।

परमात्मा होने का यही प्रत्यक्ष प्रमाण है कि तुम हो । यदि वह नहीं होता तुम्हारे भीतर में तो तुम नहीं होते । तुम नहीं ठहर पाते । वह न होता तो इतने गन्दे शरीर में भीतर बैठ कैसे भोजन से रस, रक्त, मांस बना शरीर को पुष्ट कौन रखता ? तुम्हारे शरीर की गन्दगी मुंह से, पसीने से, मल से निकलने वाली तुम्हें ही पसन्द नहीं होती तब निरन्तर अन्दर बैठ वही तो सब कर रहा है । अन्यथा तुम जीवित नहीं रह पाते ।

परमात्मा हर पल तुम्हारे साथ है । श्वांस–श्वांस में वही बह रहा है । जीवन है तो परमात्मा होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । श्वांस चल रही है तो परमात्मा की कृपा वर्षा तुम पर हो रही है । परमात्मा तुमसे पृथक् नहीं हो सकता तुम उसे देखो या न देखो, चाहो या न चाहो, मानो या न मानो, श्रद्धा करो या न करो, विश्वास करो या न करो किन्तु वह निरन्तर निरपेक्ष सत्य तुम्हारे स्वरूप में विद्यमान रहता है । जो तुमसे दूर हो जाए, दूर रहे वह व्यक्ति होगा वह परमात्मा नहीं होगा । और तुम उसे खोजने तीर्थ, मन्दिर, मस्जिद, काबा चले जाते हो । '**कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे बन माही**' वाली अज्ञानता मानव में चली आ रही है, बाप दादाओं के जमाने से । बल्ब से रोशनी हो रही है यही तो बिजली शक्ति का प्रमाण है । इसी तरह शरीर में चेतनता है तो यही परमात्मा होने का प्रमाण है ।

सुकरात, मन्सूर, जीसू, शंकर, दयानन्द, कबीर, रैदास, रज्ज़बादिने हंसते–हंसते समाज से अपनी निंदा अपमान एवं हत्या स्वीकार करते हुए सत्य, धर्म का प्रचार करते रहे ।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं, जिसने देह के भीतर जानने वाले को जान लिया उसने सब जान लिया वह ब्रह्म है । वह एक ही सबके भीतर बैठा जानता है उसके अलावा कोई अन्य देखने वाला द्रष्टा एवं जानने वाला ज्ञाता नहीं है । अतः परमात्मा को दृश्य की तरह सोचना, देखना व जानना बंद करो । परमात्मा को अब द्रष्टा की तरह देखना शुरु करो । तुम्हारा देह मन्दिर है । परमात्मा तुम्हारे देह के भीतर द्रष्टा, साक्षी, चेतन रूप में विराजमान है । खोज की दिशा बदलना होगी । दृश्य है बाहर एवं द्रष्टा है भीतर । दृश्य पर है एवं द्रष्टा, परमात्मा, आत्मा, चैतन्य स्व है । दृश्य को देखना है तो आंख खोलना होगी । द्रष्टा को देखना है, जानना है तो आंख बन्द करना होगी ।

जो केवल दृश्य में ही उलझा रहता है वह कभी आत्मा को अर्थात् अपने को नहीं जान सकेगा । जो तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है वही है परम पद, उसे यदि तुमने नहीं पाया, नहीं जाना तो तुम भिखमंगे रहे व मरे ।

जब परमात्मा के साथ एकत्व का बोध हो गया तो फिर कैसा मोक्ष पाना ? मोक्ष तो हमारा सहज सिद्ध स्वभाव है । फिर कैसा बन्धन ?

भगवान कोई वस्तु नहीं, जो तुम्हें कोई अंगुली का इशारा कर दिखा सके बता सके । भगवान तुम्हारे भीतर छिपी हुई चेतना है । यह जो तुम्हारे भीतर से मुझे समझ रहा है, तुम्हारे भीतर से जो मुझे देख रहा है उसको ही पहचान लो और भगवान से परिचय हो जायेगा । अपने ही चैतन्य को जानलेना ही परमात्मा को प्राप्त करलेना है । बाहर खोज रहे हो तो उसे कभी न खोज पाओगे । खोजो मन्दिर–मस्जिद में, काबा–कैलाश में, जीवन भर उसे , तुम न खोज

पाओगे । तुम खोज का गलत रास्ता अपनाये हो । वहां परमात्मा नहीं है परमात्मा को बाहर खोजने की चेष्टा मूर्खता पूर्ण है ।

परमात्मा तुम्हारे भीतर है तभी तो जान रहे हो, देख रहे हो, सुन रहे हो, चल रहे हो । यह तुम्हारे भीतर है, तुम हो और तुम्हीं पूछते हो यह कहां मिलेगा ? परमात्मा तो है वही तो खोजने वाले के साथ है । हां अभी तुम जिसके पीछे भाग रहे हो वह परमात्मा नहीं है वह तो मूर्तिकार, चित्रकार के मन की धारणा है, मन की कल्पना है । कोई मन्दिर, कोई अमरनाथ, कोई मानसरोवर–कैलाश, कोई काबा, कोई गिरनार कोई गोवर्धन कोई शंकर के पीछे, कोई विष्णु के पीछे, कोई राम के पीछे, भाग रहा है कोई मस्जिद, कोई मन्दिर की तरफ भाग रहा है । अपने भीतर चलो वही मिलेगा । लाख चले जाओ काशी, कि चले जाओ वृन्दावन में । जो वहां वर्षों से रह रहे हैं उनको जब नहीं मिला तब तुमको कैसे मिलेगा । पंडित तुम्हें बाहर तीर्थ, मन्दिर की ओर भगा रहे हैं सद्‌गुरु वही जो तुम्हारे भीतर जाने का मार्ग बतादे ।

जीवन परमात्मा की खूली किताब है जो परमात्मा के हाथों से लिखी सामने पड़ी है । गुलाब खिलता है उसमें तुम्हें परमात्मा नहीं दिखता । तुम मुर्दा किताबों में क्या खोजने लगे हो । यह शब्द जाल एक जंगल है उसमें जाओगे तो फंस जाओगे । अंधों को हाथी के सम्मुख खड़ा करदो तो भी वे स्पर्श करके भी हाथी का बोध नहीं कर सकेंगे । पांच अंधे हाथी दर्शन के अनुभव में अडिग है ।

स्वयं को जान लेना व परमात्मा को जान लेना दो बात नहीं स्वयं को जाना याने परमात्मा को जाना, परमात्मा को जाना याने स्वयं को जाना । पौधे को जाना तो बगीचे को जाना, बगीचे को जाना तो पौधे को जाना । ऐसा होता तो अच्छा होता, ऐसा न होता तो अच्छा होता, जब तक ऐसा भाव है तब तक मन कायम है । तब तक संसार जारी है ।

सोए–सोए देखोगे तो संसार दिखाई पड़ेगा । जाग कर देखो तो परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

तुम चले तो भटकोगे, मृग कस्तूरी की खोज पर चला तो भटकेगा । परमात्मा के लिये तुम चलो नहीं रुको । पहुँचना है तो वही रुक जाना, जहाँ खड़े हो वहीं मूर्तिमान हो जाना । परमात्मा गन्तव्य नहीं है कोई गति करके वहां नहीं पहुंच सकता जहां खड़े ही हे । गति संसार के लिये है, कृत्य संसार के लिये है । खोजकर, साधन कर सत्य को किसी ने आज तक पाया नहीं, क्योंकि सत्य तुम हो, वह तुम से दूर या भिन्न नहीं है सत्य तुम्हारा अपना अस्तित्व है । सत्य तुम्हारी सत्ता का नाम है ।

कभी कोई अज्ञानी हुआ नहीं, अज्ञानी होने का कोई उपाय नहीं अज्ञानी तुमने माना है अज्ञान तुम्हारा स्वभाव नहीं । तुम अज्ञानी नहीं हो । तुम तो अज्ञान को जानने वाले द्रष्टा हो । ज्ञानी होने की भी चेष्टा नहीं करना है । सिर्फ यह सत्य जानना है कि ज्ञान तुम्हारा स्वभाव है, चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है । तुम्हारे भीतर ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हो रही है पांचों ज्ञानेन्द्रियों से वह बाहर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूप में प्रकट हो रही है । तुम चाहो तो इस भ्रम से अभी मुक्त हो सकते हो । तुम अपने को ज्ञान स्वरूप स्वीकार न करो तो तुम्हारी मर्जी ।

परमात्मा तुम हो, तुम्हारे भीतर है । मन्दिर, मस्जिद में क्यों खोजने जाते हो, क्यों व्यर्थ समय व्यतीत करते हो । सब जगह जाकर, खोजकर, निराश होकर तुम देख चुके हो । कितने लोग लोकान्तर में तुम भटके हो । अब एक काम करलो अपने भीतर खोज लो जिसने भीतर खोजा वह कभी खाली हात नहीं आया । और जिन्होंने बाहर खोजा वे कभी भरे हाथ नहीं लौटे । केवल परमात्मा की विस्मृति हुई है स्मृति होना है । खोया तो उसे तुमने कभी नहीं ।

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ ।
मैं बोरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ ।।

तुम्हीं हो भगवान, तुम्हीं हो भक्त, तुम्हीं हो पूजा और तुम्हीं हो पुजारी और तुम्हीं हो पूज्य और जब तक यह तुम्हें स्मरण में न आवे तब तक तुम बाहर खोजते भटकते मरते रहोगे । जैसे मृग के नाभी में कस्तूरी है किन्तु बाहर खोजता है इसी तरह परमात्मा तुम हो किन्तु अज्ञानता से तुम बाहर खोजते भटकते मरते रहोगे । चिन्मय मन्दिर एवं देव तुम हो । भूल से तुम मृणमय मन्दिर एवं देव प्रतिमा में खोज रहे थे । आदमी के बनाये मन्दिर, मूर्तियों में परमात्मा को पुकार रहे थे और जिसे तुम खोज रहे थे वह तुम्हारे भीतर सदा मौजूद था । वह तुम हो । मूर्ति बनाने की जरूरत नहीं है ।

हर व्यक्ति अपने इष्ट को, भगवान को बड़ा, विराट्, विशाल मानता है किन्तु मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारों में उसे सीमित बना रखा है । भगवान का मतलब महान, सबसे बड़ा, असीम । तुम्हारी बुद्धि जब तक सीमित रहेगी तब तक तुम्हारा भगवान भी सीमा में बन्धा रहेगा । फिर तुम मन्दिर, मस्जिद तोड़ोगे । एक दूसरे को जलाओगे, सिर फोड़ोगे, तलवार, छुरी चलाओगे । अतः अपने ज्ञान को महान बनाओ ।

परमात्मा हजार–हजार ढंग से, रूप से तुम्हारे सम्मुख होता है किन्तु तुम अपने को समझा लेते हो । भिखारी होगा, कुत्ता होगा, गाय है, राहगिर होगा उसकी पगध्वनियां अनेक प्रकार से तुम्हारे समीप होती है किन्तु तुम उसे हवा का झोंका आया समझ लेते हो । तुम्हारे हृदय की धड़कन से भी ज्यादा नजदीक उसकी पगध्वनियां है । सत्य तुम्हारे तुमसे भी ज्यादा करीब है क्यांकि सत्य तुम्हारा स्वभाव है किन्तु तुम अपने मन के शोरगुल में, उहापोह में इतने उलझे रहते हो कि जो निकटतम, समीपतम है वह भी सुनाई नहीं पड़ता ।

तुम जिसे खोज रहे हो, वह दूर नहीं, वह तुम्हारे भीतर है । तुम जिसकी मांग कर रहे हो, वह मांगने से बाहर नहीं मिलेगा, वह मिलाहुआ ही है वह तुम ही हो । डूबो ध्यान में । वह तुम्हारा स्वभाव है ।

जिस दिन तुमने स्वयं को पहचान लिया कि मैं शरीर नहीं हूँ मैं आत्मा हूँ उस दिन तुमने सबको समझ लिया क्योंकि जो तुम्हारा स्वभाव है जो तुम्हारा स्वरूप है वही पशु, पक्षी, मनुष्य मात्र का स्वभाव है । ऊपर के नाम, रूप का भेद है । आकृति के भेद हैं लेकिन समस्त आकृति में जिसका आवास है, जिसने आवास किया है, उसका कोई भेद नहीं है । तुम जो चाहते हो वही सब चाहते हैं । सभी सुख चाहते हैं, सभी दुःख से बचना चाहते हैं यहां अपना– पराया भेद स्वभाव में नहीं है । राम, कृष्ण, महावीर, जीसस, मोहम्मद में जो हैं वही कुत्तों में है, वही सत्य सब में है । यदि भेद दिखाई पड़ता है तो नाम–रूप का अथवा तुम्हारी समझ की कमी के कारण दिखायी पड़ता है । पीड़ा से, मृत्यु से, दंड से सभी डरते है । अतः अपने समान ही सबको जानकर न किसी को मारे न मारने की प्रेरणा दें, न मारने में सहारा दें हट जावें ।

जीवन परमात्मा की खुली किताब है जो परमात्मा के हाथों से लिखी सामने पड़ी है । गुलाब खिलता है उसमें तुम्हें परमात्मा नहीं दिखता । तुम मुर्दा किताबों में क्या खोजने लगे हो । यह शब्द जाल एक जंगल है उसमें जाओगे तो फंस जाओगे । अंधों को हाथी के सम्मुख खड़ा करदो तो भी वे स्पर्श करके भी हाथी का बोध नहीं कर सकेंगे । पांच अंधे अपने हाथी दर्शन के अनुभव में अडिग है ।

सत्य तुम्हारा स्वभाव है तुम उससे दूर नहीं जा सकते । तुम उसे छोड़ नहीं सकते । क्योंकि वह तुमसे पृथक् नहीं । जहां तुम जाओगे सत्य तुम से पृथक् नहीं होगा । सत्य तुम्हारे साथ होगा । तत्त्वमसि '**वह तुम हो**' ।

मन के पार

मन की चंचलता का एक ही कारण है कि उसे बैठने की स्थायी जगह चाहिये कि फिर उठ कहीं न जाना पड़े । हम मन के स्थिर हो बैठने का स्थान आज तक नहीं दे सके । यही मन के चंचल होने का कारण है । यदि मन को हम ऐसा स्थायी स्थान बतापाते तो मन तत्काल शान्त हो बैठता ।

परमात्मा के अतिरिक्त मन कहीं भी नहीं रुक सकता । वहीं उसके बैठने का स्थान है । इसलिये मन की हम पर कृपा है कि वह सदा चंचल रह उचित स्थान की खोज में चल रहा है । हर कहीं वह ठहरने वाला नहीं है । जब तक कि परम विश्राम का क्षण न आजाए यदि मन कहीं रुक जाता तो हम आज परमात्मा के निकट नहीं हो पाते। हम मन को जड़ करना चाहते हैं । किन्तु मन के जड़ करने से तो संसार भी नहीं मिलता है तब परमात्मा कैसे मिलेगा ? मन की जड़ता के कारण निद्रा अवश्य हो सकेगी ।

संसार की प्रत्येक साधना मन के द्वारा होती है । ध्यान करो, या गान करो, नृत्य करो या जप करो, पूजा करो या पाठ करो । भोजन करें या भजन करें, पुस्तक पढ़ें या पत्र पढ़ें, कपड़े सिलाई करें, या जूते की सिलाई करें सभी क्रियांए सभी साधना हमारे मन के द्वारा ही होती है । बिना मन के एक भी क्रिया नहीं होती है । साक्षी का बोध मन के द्वारा नहीं हो सकेगा । मन के द्वारा निर्मित साधना मन के पार नहीं ले जा सकेगी । साक्षी तो वह केन्द्र है जहां से समस्त क्रियाएं देखी जाती

है । आत्मा को जानना हो तो मन के ऊपर जाना होगा । मन की क्रिया से जो मन के पीछे, मन का द्रष्टा है, मन का साक्षी है उससे कभी परिचय नहीं हो सकेगा ।

साक्षी भाव ही ऐसी साधना है जो मन की साधना नहीं है । किसी क्रिया से, किसी साधना से हम मन के पार नहीं जा सकेंगे । परमात्मा में प्रतिष्ठित नहीं हो सकेंगे । साक्षी भाव ही परमात्मा से एकत्वता का बोध कराने में सरल सीधी साधना है ।

हम प्रति दिन यह देखते हैं कि रात स्वप्न हुआ प्रातः उसका स्मरण रह जाता है स्वप्न झूठा हो जाता है किन्तु उसका स्मरण कर्ता वह सत्य है, स्वप्न भी चला जाता है, सुषुप्ति आ जाती है । सुषुप्ति भी जाग्रत होने पर चली जाती है । मूर्च्छा होती है वह भी टूट जाती है, ध्यान लगता है वह भी छूट जाता है, समाधि होती है वह भी पुनः छूट जाती है किन्तु सभी परिवर्तनों का देखने वाला 'दर्शन' सब समय बना रहता है । जानने, देखने वाला दर्शन नित्य है । बचपन आया गया, किशोरावस्था आई–गई, जवानी आई–गई, प्रौढावस्था आई–गई, वृद्धावस्था आई–गई, रोग आया–गया, गरीबी आई–गई, याद रही–भूल गये । सर्दी आई–गई, गर्मी आई–गई, वर्षा आई–गई किन्तु दर्शन की क्षमता, देखने जानने की क्षमता हमारी सब परिस्थितीयों में, अवस्थाओं में, कालों में, क्रियाओं में बनी ही रहती है । साक्षी भाव या दर्शन स्वभाव हमारा सदा बना ही रहता है । इन्द्रियां अपना–अपना विषय ग्रहण करने में थक जाती है । सुनने, छूने, देखने, चखने, सूंघने की क्रियांए सदा नहीं हो सकेंगी किन्तु आपका दर्शन, ज्ञान, चेतना का जो मन के पार सदा विद्यमान रहती है उसका कभी अभाव या उसमें थकावट नहीं होती है । देखने, जानने की क्षमता हममें अवच्छिन्न रूप से सर्वदा बनी रहती है ।

रात्रि सोकर जब आप उठते हैं तब वहाँ जो जीव को एक निर्विषय सुख का, अज्ञानता का अनुभव हो रहा था उसे भी कोई एक

पीछे से अवश्य देख रहा होता है । तभी तो सुबह उठकर उस जीव के द्वारा वाणी के माध्यम से, मन के माध्यम से यह कहा जाता है कि रात मैंने गहरी नींद का अनुभव किया, कि रात मुझे एक अच्छी मीठी सुख रूप नींद आई व मुझे कुछ पता नहीं चला । इस सुषुप्ति का भी प्रकाशक जानने वाला, देखने वाला कोई साक्षी, द्रष्टा, आत्मा है और यही हम हैं जो समस्त परिवर्तनों में अपरिवर्तनशील बना रहते हैं ।

हम अपने मन को देखें कि वह क्या देख रहा है क्या सोच रहा है, चंचल है या शांत, कामी है या क्रोधी, लोभी है या मोही, प्रेमी है या ईर्षालु, दयावान है या कठोर, श्रद्धा करता है या अश्रद्धा । आप इसे देखते रहो जैसे सड़क से लोग आते जातों को आप देख रहे हैं । लोगों का आना जाना बंद हो गया है तो उस खाली पन को सुनसान पने को भी देखते हैं । इसी प्रकार मन तरंगित होने को एवं शान्त होने को श्वांस के भीतर–बाहर चलने की अवस्था को कोई एक देखने वाला तत्त्व है उसी को दर्शन, साक्षी, द्रष्टा, सुमिरन, ध्यान, अवेरनेस, कान्सियसनेस, अलर्ट, सावधानी ध्यानादि नामों से कहा जाता है ।

यह जो साक्षी है, यह जो विटनेस है, यह जो द्रष्टा है, यह जो बोध का बिन्दु है, यह मन के बाहर है । यह मन की क्रियाओं का हिस्सा नहीं है यह तो वह बिन्दु है जो हमारे मन की अवस्थाओं का देखने वाला है और वही हम है । हम जिसे भी जानते हैं वह देह हो या देह की क्रिया हो, मन हो या मन के विचार हो हम उसको जानने वाले उससे सदा पृथक् ही रहते हैं ।

साक्षी को आप कभी नहीं देख सकेंगे । जो देखेगा वह तो आप ही होंगे एवं जो दिखाई पड़ेगा वह आपसे भिन्न जड़, विकारी परिच्छिन्न अनात्मा पदार्थ ही होगा । देखने वाला ही चैतन्य द्रष्टा कहलाता है । साक्षी भाव आत्मा में प्रवेश का द्वार है । पूर्ण साक्षी भाव की स्थिति आत्म उपलब्धी है । जो दृश्य बन जाएगा वह फिर अनात्मा होगा, द्रष्टा ही

आत्मा रहेगा । साक्षी आपका स्वरूप है । जिसको भी आप देख सकते हैं, जान सकते हैं, अनुभव करलेते हैं, उससे आप अलग हो जाते हैं, जानने, देखने, अनुभव करने वाले। क्योंकि आप उससे अलग हैं ही इसी से आप उसे देखपाते हैं, जान पाते हैं, अनुभव करपाते हैं ।

साक्षी का मूर्च्छित होना ही मन कहलाता है या चित्त कहलाता है । यदि साक्षी पूर्ण रूपेण जाग जावे तो मन या चित्त नाम की कोई वस्तु ही नहीं है । जितनी मात्रा में आपमें साक्षी भाव जाग्रत हो जावेगा आप उतना ही अपने को मन से बाहर अनुभव करेंगे । साक्षी भाव के जाग जाने का नाम ही अ–मन है ।

जो बिना इन्द्रिय, बिना मन के सीधा जानता है उसी को साक्षी कहते है । जो साक्षात (स्वयं) जानता है उसे साक्षी कहते हैं ।

मन जहां तक है, वहाँ तक द्वन्द्व भी रहेगा । मन बिना द्वन्द्व के ठहर भी नहीं सकता पलभर । करोड़ प्रयत्न करने पर भी रुक नहीं सकता । मन का मतलब ही द्वन्द्व है । चंचल होना उसकी अनिवार्य शर्त है । उसका सहज स्वभाव है ।

महामंत्र यही है, वेदों का सार यही है कि मन के पार, मन के पीछे द्रष्टा, साक्षी हो जाना । मन हरे राम जपे या सिनेमा गीत गाये दोनों ही अधर्म है । मन से जो निकलेगा सब अधर्म है । तुम सुनते हो तो कान के द्रष्टा हो, देखते हो तो आंख के द्रष्टा हो । तुम किसी इन्द्रियों से तादात्म्य नहीं बनाओ । दृश्य से तुम्हारी दूरी असंगता बनी रहती है । तुम मन को ऐसे देखते रहो जैसे राह पर खड़े किसी व्यक्ति को, ट्रक, बस, स्कूटर को देख रहे हो क्योंकि तुम द्रष्टा हो ।

साइकिल को पैडल मारते रहोगे चलती रहेगी, पैडल न मारो रुक जावेगी १०–२० गज पर । मन को ध्यान समाधि आदि काम देकर ऊर्जा देते हो तो वह चंचल विशेष होगा ही यदि उसे काम न दो मन मरेगा, अमन हो जावेगा । चंचल होना ही मन है एवं शान्त होना ही अमन अर्थात् आत्मा है ।

मन सदा तुम्हारे ऊपर अपना रंग डाल रहा है । और मन की तरंगों को अपने जीवन के साथ तुम जोड़ अपने को कामी, क्रोधी मान लेते हो, यह अनुभव सच्चा नहीं है । यह तुम्हारे मन के स्वभाव है । मन तुम्हारे बहुत पास में है । मन की तरंगों का प्रतिविम्ब तुम्हारे पर, चैतन्य पर बनता है मन के हटते ही सुषुप्ति में सब छाया मिट जाती है । जैसे निर्मल स्फटिक मणि पर रंगीन प्रकाश पड़ने से रंग रहित मणि रंग रूप प्रतीत होती है । रंगीन प्रकाश के सम्बन्ध हटते ही मणि ज्यों की त्यों निर्मल ही प्रतीत होने लगती है अथवा दर्पण के सम्मुख जो चीज, जो दृश्य होता है तो वही प्रतिबिम्ब, दर्पण पर निखर जाता है ऐसे ही शुद्ध चेतना के समीप मन होने से मन की छाया बन जाती है । जब तक तुम मन को दृश्य रूप एवं अपने को उसका द्रष्टा साक्षी रूप नहीं जानोगे तब तक मन के धर्म को अपना मानने का भ्रम दूर नहीं हो सकेगा । दुःख का एक ही अर्थ है आत्मा का मन से तादात्म्य ।

मन सोने से शुद्ध चेतना जग जाती है । मन के जग जाने से अशुद्ध चेतना उठ जाती है तब शुद्ध चेतना सो जाती है । मन के जागरण को अपना जागरण मत समझ लेना । मन का जागरण ही तुम्हारी नींद है । मन है तो संसार है, मन नहीं तो मोक्ष है । तुम अपने को गुरु कृपा से प्राप्त युक्तियों के द्वारा मन से मुक्त पहचान लो । जब मन है तब अनेक है, जब साक्षी जागा तब सब एक है । परिधि पर हम सब पुष्पों की तरह भिन्न है भीतर हम एक है सूत्र की तरह । जब एक बचा वहाँ ममता भी कैसी एवं अहंकार भी कैसा ?

समुद्र में तरंग की तरह मन अर्थात् संसार जिसमें स्फूरित होता है वही तुम्हारा सच्चा स्वरूप है । मन रूपी तरगें के पीछे जो अचल छुपा हुआ है वह सागर है वह तू ही है ये संसार की तरंगें ब्रह्म की ही तरंगें हैं तेरी ही तरंगें हैं ।

जहां मेरा पन मिटा वहां मन नहीं है । मेरा पन मूल है । जिससे जोड़ो वहीं मन है । वही संसार है । मन कोई वस्तु नहीं है ।

मेरा का परिग्रह ही मन है । 'मेरे' को त्याग दो तो मन गया । मन तो शरीर व आत्मा के तादात्म्य भ्रम से पैदा होता है । जिसने ऐसा जाना कि सब कुछ परमात्मा का है यहां मेरा कुछ नहीं वहाँ मन गया, मन मरा । मन का जीवन तो मेरा मानने से है ।

ज्ञानी पुरुषों के पास 'मेरा' कहने को कुछ नहीं इसलिए मन नहीं होता । जब मन नहीं मेरा नहीं, तब दुःख कहाँ से आए ?

जिसकी किसी प्रकार की आकांक्षा न रही, वासना न रही, कामना न रही, जो कुछ भी नहीं चाहता, जो है उसके साथ पूर्ण तृप्त है । ऐसे व्यक्ति का मन गल गया । उसका मन अ–मन की दशा को उपलब्ध हो गया ।

तुम द्रष्टा, साक्षी आत्म रूप में रहो । मन के साथ मत मिलो । मन को न रोको, न मोड़ो, न कहीं जोड़ना है । मन की स्वतन्त्रता में बाधा नहीं पहुंचाना । तुम केवल उसे देखते रहो । देखना ही तुम्हारा स्वभाव है । मन तुम्हारी सत्ता से ही नाच रहा है । तुम उसे केवल देखते रहना । मन की राग, द्वेष, काम, क्रोधादि कोई वृत्ति तुम्हारा विकार नहीं है । मन विकारों का भंडार है । मन के खेल पर न मोहित होना न क्रोधित होना । इसका ऐसा ही स्वभाव है । तुम उसपर कोई अंकुश न लगाना । उसकी स्वतन्त्रता में बाधा न पहुँचाना । तुम जाग कर देखते रहना । मन की चिन्ता, व्यथा तुम्हारी नहीं, तुम मन माया को देखने वाले द्रष्टा मात्र हो । यह जहां भी जावे, जाने देना । तुम केवल देखते रहना । मन के खेल में, लीला में खो नहीं जाना केवल देखते रहना । देखना ही जागना है । जागना ही देखना है ।

जो मनके पार हो गया, मन का द्रष्टा हो गया अब उसे सुख आवे या दुःख कोई भी हर्षित एवं शोकाकुल नहीं कर सकते ।

द्रष्टा रहो

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, ध्यान, समाधि अवस्थाएं दृश्ये होने से सब मिथ्या है किन्तु उनको देखने वाला द्रष्टा ही एक एवं सत्य है । वह जो देखने वाला भीतर है उसे जानलेना ही बुद्धत्व है, स्वयं को जानलेना ही बुद्धत्व है । शेष सब पराया है । शरीर का रंग काला हो या गोरा । सुन्दर हो या असुन्दर वह जो भीतर द्रष्टा है वह सब में एक है । जिसने उसे खोजना शुरु कर दिया, उसने सत्य की तरफ कदम रखना शुरु कर दिया । यदि तुम्हें भीतर द्रष्टा अमरात्मा का बोध जाग्रत न हो तो तुम अपने को देह रूप कारागृह के बन्दी हो मरा ही समझो ।

अवलोकन का अर्थ होता है बिना किसी निर्णय के तटस्थ दर्शन । न यह कहना कि ठीक है, न यह कहना कि गलत है । न यह बुरा, न भला, न पाप, न पुण्य । तुम कोई निर्णय मत लेना । तुम सिर्फ देखना । जैसे तुम रास्ते के किनारे खड़े सामने से भीड़ को जाते–आते देख रहे हो । कोई चोर, कोई साधु, कोई पशु, कोई पक्षी – किसी से प्रयोजन नहीं रहता केवल देखते रहते हो । आकाश में बादलों को, उनके रंगों को देख लेते हो किन्तु कोई निर्णय नहीं करते । मात्र देखने पर ध्यान रखो । तुम अच्छे–बुरे, पुण्य–पाप, ठीक गलत के न्यायाधीश न बनो । तुम तराजु लेकर तौलने मत लगो । तुम मात्र द्रष्टा रहो । जिसे उपनिषद साक्षी कहते हैं । बस देखो । जैसे दो शराबियों को दूर से लड़ते देख लेते हो इसी तरह देह की क्रियाओं से अपना कुछ लेना–

देना सम्बन्ध नहीं एक फासला बना कर चुपचाप तटस्थ भाव से देखो । तुम्हें बोध होगा कि मैं कृत्यों से अलग हूँ । पाप–पुण्य, कर्ता–भोक्ता से पृथक् हूँ यह अपने कृत्यों के प्रति अलगपना का नाम ही मुक्ति है । जो पाप अथवा पुण्य के साथ अपने को एक समझता है यह भ्रान्ति है । न तुम कर्ता हो न भोक्ता । सदा जानो कि मैं केवल द्रष्टा हूँ, कर्ता नहीं । फिर पाप–पुण्य दोनों ही मिट जाते हैं । जैसे स्वप्न में देखे, किये, भोगे विषय का जाग्रत होने पर कोई सम्बन्ध नहीं रहता ऐसे ही तुम अपने को जाग्रत अवस्था के सभी कर्म व भोगो से असंग समझो ।

परमात्मा को भूलगए तो कोई हानि नहीं किन्तु अपने को कभी मत भूल जाना । '**याद है आबाद है, भूलगया बर्बाद है**' । अपने को भूला, तो सब गया, खुद की याद रखी और उसी यादाश्त को रोज–रोज सम्हालते गए तो एक दिन सहज समाधि सिद्ध हो जाएगी । जैसे पहाड़ों से पानी गिरता रहता है तो मजबूत चट्टान को भी तोड़ बालू का कण बना डालता है ।

जागते–सोते, उठते–बैठते, खाते–पीते, आते–जाते यही स्मरण रहे कि मैं सर्वदा परमात्मा से घिरा हुआ हूँ या मेरे देह में परमात्मा घिरा हुआ है । सभी रूप उसी के हैं, सभी आवाज उसी के हैं । उससे मैं भिन्न नहीं ।

लोग पूछते हैं परमात्मा कहाँ है । पूछना चाहिये यह पूछने वाला कौन है ? यह खोजने वाला कौन है ? कौन खोजे परमात्मा को । परमात्मा चारों तरफ से घेरे हुए खड़ा है । तुम परमात्मा के सम्मुख ही खड़े हो और पूछते हो परमात्मा को कहाँ खोजे । वह पूछना ऐसा ही पागलपन है जैसे कोई सूर्य के प्रकाश में खड़ा होकर पूछे कि हम सूर्य के प्रकाश को कहाँ खोजे ? यहाँ जो भी है, जहां भी है एकमात्र वही है । आंख हमारी बन्द है उसे खोलना ही मात्र साधन है । परमात्मा एक क्षण कभी तुमसे दूर नहीं हुआ । खोजने वाले के साथ ही परमात्मा चल रहा है ।

जिस कस्तूरी को मृग सारे जीवन अपने से बाहर खोजता फिरता है वह कस्तूरी उसी खोजने वाले मृग में छिपी रहती है । इसी प्रकार जिसे अज्ञानी जीव सारे जीवन बाहर तीर्थ, मन्दिर, चित्र, मूर्ति, ध्यान, समाधि में खोजते फिरते हैं वह उसी खोजने वाले में अर्थात् तुम में ही छिपा है । वह तुम ही हो जो परमात्मा को अपने से बाहर तलाश करने में चल पड़ा है वह परमात्मा को तलाश नहीं सकेगा, क्योंकि परमात्मा तलाश करने वाले में ही है ।

बहुत हुआ, अब जागो । जागने के लिये एक ही उपाय है कि तुम थोड़ी देर चुप–चाप खाली बैठो । कुछ मत करो, कुछ मत सोचो, कुछ निर्णय मत लो । कुछ अच्छा–बुरा मत कहो । करना ही संसार है । न कुछ करना ही मुक्ति है, निर्वाण है । घड़ी दो घड़ी ऐसे हो जाओ जैसे तुम मर चुके हो, तुम हो ही नहीं । श्वांस चलती रहे, तुम केवल देखते रहो । कर–करके आज तक क्या मिला पचास–साठ साल की उम्र हो गई और बीस साल इसी रास्ते पर चले तो क्या मिलेगा ?

ध्यान रखना, जिस वस्तु को हम देखलेते हैं वह दृश्य हो जाती है और हम उसके द्रष्टा हो जाते हैं उससे हम अलग है । जिसके हम द्रष्टा न हो सके, जिसे हम दृश्य न बना सके वहीं हम हैं, वही परमात्मा है। शरीर के अंग–अंग टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं किन्तु हम कहते हैं मैं बाल–बाल बचगया । तुम कभी नहीं टूटते । हाथ टूट गया, पैर टूट गया, सिर फट गया, आंख फूट गई किन्तु तुममें, द्रष्टा में किसी प्रकार का कोई भी विकार नहीं आपाता । सब तृप्तियां, अतृप्तियां शरीर, मन, इन्द्रियों में हैं । जाना–आना, बनता–मिटता, कम–ज्यादा होना शरीर का है । तुम अचल ज्यों के त्यों न आते न जाते, न बनते न बिगड़ते । तुम्हारा होना अछूता ही बना रहता है । आकाश में बिजली, बादल, सूर्य, चन्द्र, वर्षा,आंधी तूफान होने पर भी आकाश में कोई खण्ड, कोई रेखा, कोई दाग, धब्बा नहीं पड़ता ।

इसी प्रकार तुम्हारा चिदाकाश है जिसमें मन के अच्छे–बुरे कर्मों के कारण भी कोई विकार नहीं आता । द्रष्टा सर्वदा हर प्रकार के दृश्य से असंग एवं दूर ही रहता है । यह तुम्हारा देह के भीतर का चिदाकाश कभी गन्दा नहीं होता ।

जिसने जान लिया कि सुख मेरे भीतर है, तब दूसरे के प्रति शिकायत भी नहीं होगी कि वह मुझे दुःख देता है । वह मुझे प्यार नहीं करता है ।

तुम जो हो वही होकर तुम मालिक बन सकोगे । मांग छोड़ते ही व्यक्ति मालिक हो जाता है । मांग करते ही वह व्यक्ति मालिक न रह भिखारी हो जाता है । आज, अभी, इसी क्षण तुम मालिक हो सकते हो यदि अपनी तरफ से सभी प्रकार की मांग छोड़ देते हो तो । मालिक होने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं । तुम कितने ही बाहरी वस्तु के मालिक होने का मिथ्या अहंकार करो, मौत सब छीन ही लेगी । तुम जो हो, वह रहोगे । यहां–वहां हटने की रत्ती भर कोशिश न करो । यह–वह बनने की चेष्टा न करो । जो हो वही रहो उससे भिन्न जाने की चेष्टा की तो तुमने अनन्त दूरी कर दी अपनी मन्जिल से ।

देह के बाहर एवं भीतर मन, बुद्धि, काम, क्रोध आदिके तुम आत्मा तो द्रष्टा हो । देखते–देखते जब कुछ न बचे तब जो देखने वाला रह जाता है, जिसे देखने का कोई उपाय नहीं वह आत्मा है, वही तुम हो । तुम कभी भी दृश्य नहीं बन सकते । यदि आत्मा दृश्य बन जाए तो किसके लिये, फिर उसे कौन देखेगा ? वही तो एक सबका द्रष्टा है । उसे जो देखेगा वही आत्मा है और जो दिखाई पड़ जायगा वह अनात्मा ही होगा ।

आत्मा का होना ही शुद्ध–बुद्धता है । शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन बुद्धि के धर्म आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते । आत्मा इनके

द्वारा कभी कलुषित नहीं होती । जैसे दर्पण के सामने कोई चोरी करे, हत्या करे, मैथुन करे, क्रोध करे किन्तु दर्पण में कुछ भी नहीं होता । दर्पण अछूता ही रहता है । अथवा सूर्य के प्रकाश में कोई शुभाशुभ कर्म करे किन्तु सूर्य उन कर्मों से सदा असंग ही रहता है । इसी तरह आत्मा के सम्मुख मन, प्राण इन्द्रिय शरीर संघात् कुछ भी शुभाशुभ कर्म करे किन्तु आत्मा कर्मों का प्रकाशक होकर भी उनके शुभाशुभ कर्मों के फल से किंचित् भी सम्बंध नहीं रखता। जितना भी आप दृश्य देखते जाओ आत्मा पीछे–पीछे हटती ही जाती है। आत्मा के पीछे कोई अन्तिम द्रष्टा नहीं है । आत्मा ही सबका अन्तिम द्रष्टा है। वही तुम हो ।

महात्मा होने में देरी है, साधन है किन्तु परमात्मा तुम अभी हो, जैसे के तैसे हो । परमात्मा होने के लिये किसी अभ्यास की जरूरत नहीं है । देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, विचार, भाव तुम नहीं । यदि यह बात समझ आजावे तो तुम अभी **अहं ब्रह्मास्मि** की घोषणा कर सकते हो ।

जो कर रहे थे कल तक, वह आज भी करो, आने वाले कल में भी करना । बस ! सब करने में से 'मैं कर्ता हूँ' यह मिथ्या अहं को हटा लेना । कर्ता भाव हटा लेना । दुकान, आफिस जाओ, अब मालिक बनकर नहीं, बाबु बनकर नहीं, द्रष्टा बन कर, साक्षी बनकर जाना । देखते रहना ग्राहक आते हैं, खरीदते हैं और ग्राहक नहीं आते हैं तो भी देखते रहना ।

दृश्यके पीछे जो भागते रहेंगे उन्हें दृश्य तो मिलेगा नहीं क्योंकि वह छाया मात्र है सरोवर में चांद का प्रतिविम्ब की तरह । छूने जाओगे, पकड़ने जाओगे चन्द्रमा बिखर जावेगा । इसी तरह दृश्य को सत्य मान उसे प्राप्त करने में लग गये तो द्रष्टा भी खो जायगा । क्योंकि द्रष्टा को पाने का होंश ही नहीं रहेगा, समय ही नहीं होगा दृश्य में फंसे रहने से ।

तुम्हारे भीतर अमृत का भण्डार छिपा पड़ा है, तुम उसी के मालिक होकर भी भिखारी बने भीख मांग रहे हो । जिसके लिये तुम तरस रहे हो वह आनन्द, वह रस, वह सुख तुम्हारे अन्दर छिपा पड़ा है । जिस धन को तुम खोजने निकले हो उस धन का अम्बार तुम्हारे भीतर लगा है । सम्पत्ति भीतर है, विपत्ति बाहर है । जिसके पास बाहर बहुत कुछ है वे तड़फते रोते पाये जाते हैं, उन्हें देख भी तुम्हारी आंख नहीं खुलती फिर भी प्राप्त में सन्तुष्ट नहीं हो ।

अज्ञानी सब देखता है किन्तु उस एक को देख नहीं पाता जो सबका द्रष्टा है । अज्ञानी की तरह ज्ञानी सबको तो देखता ही है किन्तु उसे भी देख लेता है जो सबको देखता रहता है, जो सबका द्रष्टा है । ज्ञानी उसी द्रष्टा में जीता है उसी को अपना स्वरूप जानता है ।

जो तुम्हारे अनुभव में आ गया है, वह दृश्य हो गया । जो दृश्य बन गया वह द्रष्टा नहीं रहा । तुम समस्त क्रिया, भोग, वृत्तियों के देखने वाले हो । तुमने जो भी भीतर देखा कि अमृत रस झर रहा है, दिव्य प्रकाश ज्योति दिख रही है, संगीत ध्वनी सुनाई पड़ रही है, अनहद नाद सुनाई पड़ रहा है तो तुम उन सबके देखने वाले हो । जब तुमने देखा भीतर न कोई विचार, न कोई तरंग, न कोई भाव केवल आनन्द शांन्ति है और तुम इस शान्ति से भी अलग हो, तुम इस शान्ति को भी जानने वाले हो । न मैं मन हूँ, न शून्य हूँ । सभी चीजे जो जानी जाती है उनसे मैं अलग हो गया ।

आत्मा को जहर नहीं छूता । शरीर में ही जहर व्याप्त होता है । घाव, केन्सर, ट्युमर, जलन, सड़न, पीड़ा सब देह में है जिसने जाना कि मैं आत्मा हूँ वह सब पापों के मध्य खड़ा रहे तो भी कमलवत् पाप उसे छूएगा नहीं ।

अधिकांश स्त्रियां दृश्य बनने में रस रखती हैं । पुरुष दर्शक बनने में रस लेते हैं । जो कोई बिरला ही द्रष्टा में रुची रखते हैं । जो

दृश्य को देखते है एवं वे अपने को उसका द्रष्टा मानते हैं ।

स्फटिक मणिवत् निर्मल मुझ अद्वय आत्मा को कहाँ प्रमाता है और कहां प्रमाण है ? कहाँ प्रमेय एवं कहां प्रमा है । प्रमाता याने ज्ञाता, प्रमाण का अर्थ ज्ञान प्राप्त करने के साधन इन्द्रियां, प्रमेय का अर्थ जो जाना जाए, (ज्ञेय) प्रमा का अर्थ ज्ञान । साक्षी भाव में स्थिर हो जाने पर यह सब कुछ नहीं बचे । न कोई जानने वाला है, न कोई जानने में आने वाला बचा । दो गये तो अब कैसा सब्जेक्ट, कैसा आब्जेक्ट, अब कैसा ज्ञाता और कैसा ज्ञेय । अब कौन द्रष्टा और कौन दर्शन । दो तो रहे नहीं । यह द्रष्टा–दर्शन तो दो हो तो घटे । जब एक ही बचा तो कौन जाने, किसको जाने, कैसे जाने एवं क्या जाने । ज्ञान की अन्तिम घड़ी में वृत्ति ज्ञान भी समाप्त हो जाता है । जीव ब्रह्म का भेद भी समाप्त हो जाता है न जीव बचा न ब्रह्म बचा । न कोई जीव है न कोई ब्रह्म है । जब तक दो हैं तब तक अज्ञान है ।

स्वभाव हेतु साधना नहीं करना पड़ता । आत्मा, मुक्ति हमारा स्वभाव है । उसको पाने का कोई मार्ग है ही नहीं क्योंकि तुम सर्वदा मन्जिल पर ही हो **'नान्यः पन्था'** ।

पाने के लिये तो तब साधनों की जरूरत होती है जब वस्तु दूर एवं अप्राप्त हो । परमात्मा पाया हुआ है । बल्कि स्वयं ही परमात्मा है उसे तो केवल सम्यक् प्रकार से जान लेना ।

जीवन के साक्षी रहो । आदर्श तुम्हें कर्ता बनाता है । आदर्श गया तो कर्तापन चला जावेगा । **'तस्य कार्यं न विद्यते'** (गीता ३/१७)

आदर्श बनाने का भाव यह रूग्ण चित्त की पहचान है । ब्रह्मचर्य का आदर्श एक कामी चित्त का प्रमाण है । स्वास्थ्य रोगी का, अचोर्य चोर का, दान लोभी का । आदर्श लाने से नहीं आता अहंकार जाने से आदर्श आएगा ।

जैसा है वैसा जानने का है, वैसा निश्चय करना है । कुछ करना नहीं है । सत्य तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है । तुम ही वही हो । उससे बाल बराबर भी दूर नहीं हुए । वह साथ ही है, ऐसा भी नहीं बल्कि तुम ही हो । अपने भीतर ही लिये चल रहे हो उसी मन्जिल परमधाम को जहां तुम पहले से ही रहते चले आये हो जिससे कभी तुम दूर गये ही नहीं । वह परमधाम तुम ही हो ।

परमात्मा को दृश्य की तरह देखने की भ्रान्ति में मत पड़ जाना । वह तो सबको देखने वाला, जानने वाला है । उसे कैसे देख सकोगे ? सभी खोजने वालों क देखलेने में आग्रह है । जब कि वह केवल देखने वाला है । वह दृश्य नहीं बन सकेगा । यह निश्चय पूर्वक दूसरा नहीं है । बस तुम द्रष्टा बनो । इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं है ।

कर्ता होने से ही सब द्वन्द्व है । कर्ता न बनो । साक्षी रहो जो साक्षी बना रहता है वह सदा तृप्त है । आकांक्षा से अतृप्ति होती है । स्वस्थ रहो । स्व में स्थित रहने वाला सदा तृप्त रहता है ।

जीवन के जन्म–मृत्यु पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं । जब घटना होती है, घट जाती है हमसे दोनों अवस्थाओं के लिये कोई नहीं पूछता । फिर जीवन के मध्य जो भी घटना होती है उसे भी स्वीकार करते चलो, साक्षी रहो, उसमें अपनी कोई आकांक्षा मत करो । जीवन एक नाटक है इसे गंभीरता से न लो । रामलीला की तरह देखलो । चिन्ता से अहंकार से दुःख होता है । जो हो उसे स्वीकार करलो । कर्ता के भाव से चिन्ता होती है । साक्षी का भाव है तो चिन्ता नहीं होगी ।

जिसने यह जाना कि मैं देह नहीं, देह मेरा नहीं वह साक्षी पर उतर गया, वह साक्षी हो गया । मैं केवल द्रष्टा हूँ मन मैं नहीं, मन मेरा नहीं यह दृश्य है ऐसा बोध हो जाने वाला व्यक्ति साक्षी पर उतर गया । यह ब्रह्म से दूर नहीं है । ऐसा ज्ञानी हुए, न हुए विषय की चिन्ता

नहीं रखता । ब्रह्म से लेकर तृण पर्यन्त एक ही ब्रह्म की लीला है । वह निर्भय, निर्विकल्प, प्रशान्त हो जाता है ।

लोग गुरु मंत्र पूछते हैं । सद्‌गुरु मंत्र नहीं देते वे तो मन को भी छीन लेते हैं फिर मंत्र कौन दोहराएगा ? गुरु तो साक्षीभाव जगाता है । मन के द्रष्टा बनो, तुम कुछ भी मत चुनो तुम केवल साक्षी रहो । मन चाहे राम–राम दोहराएं या सिनेमा गीत गाए तुम केवल उदासीन रहकर द्रष्टा रहो, साक्षी रहो । मंत्र पढोगे, प्रार्थना पूजा करोगे तो कर्ता हो जाओगे । केवल देखने वाले रहो । जैसे सड़क के किनारे लोगो के गमनागमन को देखते रहते हो ऐसा ही फासला रखो समस्त दृश्यों से । दृश्य में मत मिलो । यहि महामंत्र है कि मैं साक्षी हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, मैं आत्मा हूँ ।

शरीर अपने आप चल रहा है । श्वांस अपने आप चल रहा है रक्त अपने आप बन रहा है, मन अपने आप चल रहा है । स्वप्न अपने से चल रहा है । यदि यह ख्याल आजाए तो शरीर की क्रिया, प्राण की क्रिया व मन के विचार तुम्हारे से नहीं चल रहे हैं । चलाने का विचार ही भ्रान्ति है । तुम न चला रहे हो न तुम इनके क्रियाओं को रोक सकोगे । जिसने इनको दृश्य जान लिया वह साक्षी को द्रष्टा को उपलब्ध हो जाएगा ।

शरीर, प्राण, मन किसी को मेरे सहयोग करने की जरूरत नहीं है मैं तो साक्षी हूँ । चिन्तन मनन से भी मैं पार हूँ । यह चिन्तन, मनन भी अपने से हो रहा है । मैं केवल उनका द्रष्टा मात्र हूँ ।

आत्मा कभी दृश्य नहीं हो सकता । आत्मा दृश्य हो जावे तो उसे कौन देखेगा ? कोई दो आत्मा तो है नहीं, जो एक दूसरे को देख लेगा ?

दृश्य को देखते–देखते जब कुछ भी देखने को शेष न रहे तब जो रहजाता है सबका अनुभव करने वाला वही आत्मा है ।

तुम साक्षी हो । जो होता है वह शरीर व मन के समझोते से हुआ । तुम दर्पण के समान हो । दर्पण के सम्मुख कोई हत्या करे, प्रेम व चोरी करे दर्पण का उन दृश्यों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । तुम दर्पण की तरह साक्षी आत्मा हो । अज्ञानता से जीवात्मा दृश्य शरीर, मन, बुद्धि के साथ मैं हूँ ऐसा अध्यास कर बैठा है ।

शरीर, मन, बुद्धि के साथ एकता की है तो तोड़ने हेतु साधन की जरूरत है। यदि मन, बुद्धि के साथ एकता नहीं की तो कुछ करना नहीं है । बस जो तुम हो उसे जान लेना है, जाग जाना है । अब मैं जैसा हूँ वैसा ही स्थित हूँ । जब तक दौड़ते रहोगे तो जो पाया हुआ है उसे खो दोगे '**कस्तूरी कुण्डल बसे**' संसार में दौड़ने पाने मैं । अब क्या ग्रहण क्या त्याग, कुछ करने पाने को नहीं रहा, अब हर्ष–विषाद का विषय ही नहीं रहा । अब तो मैं जैसा भी हूँ स्थित हूँ । इसी क्षण तुम अपने में स्थित बैठे हो तो कुछ पाने का कुछ नहीं । बुद्ध ने कहा – जो पहले से ही पाया हुआ था उसे ही हम खोज रहे हैं, वो हमारे अन्दर पहले से ही है । महात्मा बनना तो बहुत ग्रहण–त्याग करना पड़ेगा किन्तु परमात्मा होने में एक क्षण नहीं लगेगा । '**अहं ब्रह्मास्मि**' एक क्षण में घोषणा कर सकते हैं । जैसा हूँ वैसा ही हूँ । ऐसा हो गया तो वह गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी हो गया ।

जो कल करते थे दुकान, अफिस, खेती वही करते चलो केवल कर्म के पीछे से कर्ता को हटालो । जो हो रहा है जैसा हो रहा है तुम साक्षी रहो ।

स्व से बाहर गये तो सब पर है, अन्य है । चाहे वह दुकान हो या मन्दिर ईश्वर (परमात्मा) सब संसार है । सब स्मरण, प्रार्थना, पूजा **पर** के हैं । **पर याने माया** । मैं तू की खबर देता है । तू नहीं तो मैं नहीं रह सकेगा । स्व–पर या तू–मैं एक ही सिक्के के दो पहलु है ।

किसे पाना, कौन पायगा, क्या पायगा ? सब एक ही है यहां कुछ अन्य नहीं जो प्राप्त किया जावे । एक **मेवाऽद्वितीय ब्रह्म, नेहनानास्ति किंचन** । फिर जो पाया जायगा वह एकदिन अवश्य खो जायगा । मिला वह बिछुड़ जायगा । जो पहले नहीं था आज हुआ है । वह फिर मिट जायगा, फिर नहीं हो जायगा ।

यदि कोई गुरु, परमात्मा को पाने के लिये साधन बताता है तो जानना कि उसने अभी परमात्मा की अखण्डता, सर्व व्यापकता, सर्व रूपता को नहीं जाना है, उसे परिच्छिन्न मान रखा है । इसीलिए पाने का साधन बताता है । परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है । वह नित्य सिद्ध उसे पाना नहीं केवल जानना है कि वह मैं हूँ । परमात्मा व तुम्हारे बीच कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता । तुम्हारे व उसमें द्वैत नहीं तुम्हारा मिटना ही परमात्मा है । न वह पिता है, न माता है, न सखा है, न स्वामी है । क्योंकि वह अकेला है ।

कर्ताभाव छूटते ही जीवन स्वस्थ हो जाता है, शान्त हो जाता है । कर्म छोड़ कर भागने की जरूरत नहीं केवल कर्ताभाव छोड़ने की जरूरत है । दौड़े की भटके, रुके की पा जाओगे । बुद्ध ने दौड़कर नहीं पाया रूक कर पाया । परमात्मा दौड़ने वाले के साथ ही दौड़ रहा है ।

बात सिर्फ बोध की है, चेष्टा, प्रयास, जप की बात नहीं है, कुछ करना नहीं है । जैसा है वैसा जानना है । करने की बात ही व्यर्थ है । मैं देह नहीं हूँ 'मैं ब्रह्म हूँ' यह दोहराने की भी बात नहीं । दोहराने से तो बोध न होने का ही संकेत मिलता है । जब मालुम पड़ गया तो फिर क्या दोहराना।

जिस साधक को यह निश्चय हो जाता है कि सब खेल प्रकृति में चलता है, मैं मात्र द्रष्टा हूँ । उसके सब क्लेश समाप्त हो जाते हैं, सब विकार शून्य हो जाते हैं ।

जैसा दर्पण के सामने घटनाए होती है, प्रतिबिम्ब बनते हैं, घटनाएं समाप्त हो जाती हैं, प्रतिविम्ब खो जाते हैं, दर्पण फिर खाली का खाली वही तो दर्पण की शुद्धि है । दर्पण में कुछ पैदा नहीं होता प्रतिविम्ब कुछ वस्तु नहीं । दर्पण में कुछ बना नहीं । केवल बनने का आभास हुआ । इसी प्रकार तुम्हारे मन में नाना वृत्तियां उठती बैठती हैं । तुम उन सब से पृथक् असंग साक्षी ही रहते हो । द्रष्टा ही रहते हो ।

प्रत्येक अनुभव से तुम अलग ही होते हो, क्योंकि अनुभव के भी तुम द्रष्टा हो । जब तुम कहते हो बड़ा मजा आया तब तुम देखनेवाले निश्चित ही उस आनन्द को दूर खड़े देख रहे हो कि आनन्द आया जो पहले नहीं था । आनन्द से तुम अलग हो ।

एक बात सत्य है जीव जागे या सोये, जाग्रत देखे या स्वप्न देखे, कभी मन हारे या जीते, कभी धनी बने, कभी निर्धन, कभी महलों में जीव रहे या झोपड़ी भी न मिले । कभी सुस्वाद भोजन, तो कभी बासी रूखी रोटी, कभी घी घना, कभी मुट्ठी चना, कभी वह भी फना सब बदलता रहता है किन्तु द्रष्टा नहीं बदलता । बचपन बदला, जवानी बदली, बुढापा भी चला जारहा है केवल द्रष्टा बचा रहता है । जीवन में एक ही वस्तु को स्थिर अचल पाओगे वह है इन सब परिवर्तनों को देखने वाला सर्दी, गर्मी, वर्षा में सुख–दुःख में सदा साथ है ।

द्रष्टा से ऊपर चलें

ज्ञान की प्रथम किरण प्रारम्भ में दृश्य–द्रष्टा क विवेक द्वारा फूटती है । संसार में दो ही तत्त्व पाये जाते हैं । नाम भिन्न–भिन्न कहे जाते हैं जैसे द्रष्टा–दृश्य, जड़–चेतन, आत्मा–अनात्मा, ध्याता–ध्येय, प्रमाता–प्रमेय, अनुभावना–अनुभाव्य ।

जिसको द्रष्टा ने देख लिया, ध्याता ने ध्येय को जानलिया, प्रमाता ने प्रमेय को जानलिया, अनुभोक्ता ने जिस विषय का अनुभव कर लिया उन–उन दृश्य, ध्येय, ज्ञेय, प्रमेय से वह देखने, जानने, अनुभव करने वाला निश्चित ही पृथक होता है । शब्द को सुननेवाला, स्पर्श को ग्रहण करनेवाला, रूप को देखने वाला, रस का स्वाद लेने वाला, गन्ध आदि का सूंघने वाला, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से पृथक ही होता है । जो द्रष्टा है वह दृश्य कभी नहीं है । तुम उससे पार हो, जो भी तुम अनुभव करलेते हो वह तुमसे अलग हो जाता है ।

अब ज्ञान की पूर्णता में द्रष्टा–दृश्य, ज्ञाता–ज्ञेय, ध्याता–ध्येय, प्रमाता–प्रमेय, अनुभाव–अनुभाव्य दो नहीं एक ही है । यदि दो बना रखेंगे तो अद्वैत की सिद्धि नहीं होगी, द्वैत की ही सिद्धि होगी, वह तो अज्ञान ही है । विरोधाभास प्रतीत होता है प्रारम्भ व अन्त के सिद्धान्त में किसे सच कहा जाय ?

जब दृश्य को सत्ता शून्य कहा जाता है तब द्रष्टा भी सत्ता शून्य हो जाता है जैसे पुत्र नहीं है तो पिता उपाधि भी नहीं रहेगी । पुत्र मरा तो पिता भी मरा पुरुष बचा रह जाएगा । पिता नाम तो पुत्र की अपेक्षा से है । दोनों एक ही श्रेणी के नाम साथ–साथ पैदा होते हैं और एक साथ ही खोजाते हैं । इसी तरह दृश्य की अपेक्षा से द्रष्टा नाम रहता है । दृश्य झुठा है तो द्रष्टा भी उसी के साथ झुठा हो गया । द्रष्टा और दृश्य एक ही श्रेणी के हैं । द्रष्टा से दृश्य अलग नहीं है । द्रष्टा ही दृश्य है । दो नहीं एक ही है । द्रष्टा दृश्य के बिना नहीं रह सकता । दृश्य के बिना तुम द्रष्टा का निर्णय कैसे कर सकोगे, द्रष्टा की परिभाषा कैसे कर सकोगे । दृश्य के बिना द्रष्टा बन नहीं सकेगा । द्रष्टा की परिभाषा में दृश्य को खड़ा करना ही पड़ेगा तब वह द्रष्टा से दृश्य अलग कहां रहा ? एक ही होगा पहले दृश्य गिर जाता है फिर द्रष्टा भी गिर जाता है और जब द्रष्टा खड़ा होगा तो दृश्य भी निश्चित सामने खड़ा हुआ ही है अन्यथा तुम किस बात के, किस वस्तु के द्रष्टा बनोगे ? बन ही नहीं सकते । दोनों सापेक्षिक उपाधिया है । जो द्रष्टा है व दृश्य ही है दो नहीं एक ही है और यही घोषणा उपनिषदों के द्रष्टा ऋषियों की है **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'एकमेवाऽद्वितीय ब्रह्म' नेह नानास्ति किंचन** ।

अस्तु ! दृश्य से प्रथम साधक को मुक्त करना होगा । तब दूसरा स्वत घट जावेगा । करना नहीं पड़ेगा । बेटा मरा तो बाप को मारना नहीं पड़ेगा, बाप स्वतः ही मर जाएगा । बेटे के अभाव में अब उसे बाप कौन कहेगा । पति के अभाव में पत्नी नहीं तो दृश्य के अभाव मे द्रष्टा भी नहीं बच सकेगा । दृश्य और द्रष्टा दोनों एक ही सिक्के के पहलु है । जिसको हम देखते हैं उसमें हम एक ही भासते हैं ।

जैसे दर्पण अनेक होने से उससे प्रतिबिम्बित छवियाँ अलग–अलग नहीं है । दर्पण के विकारी होने से प्रतिबिम्ब विकारी नहीं हो सकता । पूर्णिमा का चन्द्रमा चाहे सागर पर प्रतिबिम्बित हो चाहे झील

पर, चाहे सरोवर पर, चाहे नदी के ऊपर चाहे गन्दे पानी पर । प्रतिबिम्ब गन्दा, विकारी नहीं होता । अनेक आभूषण होने से स्वर्ण में भेद नहीं होते । स्वर्ण विकारी नहीं होता । इसी प्रकार दृश्य अनेक होने से द्रष्टा अनेक नहीं होते । साथ ही द्रष्टा–दृश्य दो भी नहीं होते एक ही है । द्रष्टा ही दृश्य है । विम्ब ही प्रतिबिम्ब है । स्वर्ण ही अलंकार है । राम व रावण में, कृष्ण व कंस में, दानी व भिखारी में हत्यारे व दयालु में एक ही उतरा हुआ है । वहां हिन्दु, मुस्लिम दो नहीं है । राम में ही राम दिखे, हिन्दु में ही राम दिखे तो अभी तुम्हारी आंख खुली नहीं तुम अन्धे हो । जिस दिन रावण में भी राम दिखने लग जावे । मुस्लिम में भी राम दिखाई पड़ने लग जावे उसी दिन तुम्हारे चक्षु खुले जानना । रावण भी उसी का रूप, मुस्लिम भी उसी का रूप शुभ में अशुभ में, ऊंच में नीच में, पशु–पक्षी में जल थल में एक ही तत्त्व है । कहीं राजा बनकर कहीं प्रजा बनकर, कहीं दानी होकर, कहीं भिखारी होकर, कहीं गुरु बनकर, कहीं शिष्य बनकर, कहीं फूल बनकर तो कहीं कांटा बनकर वह एक ही है ।

''तेरे रूप अनेक तू एक ही है''

ऐसा देखते देखते द्वैत समाप्त हो जावेगा । एक को देखते देखते एकरस हो जाओगे ।

देखत देखत ऐसा देख, मिट जाये द्वैत रह जाय एक ।

अब कहां रहा द्रष्टा ? वह तो दृश्य के कब्र में उसके साथ ही सोगया । अब जो बचा वह अनिर्वचनीय, अप्रमेय, अकथनीय, अतुलनीय, सत्ता मात्र, चिनमात्र ।

तात्पर्य यह है कि जो भी तुम्हें दिखाई देता है वह एक ही है । तुम्ही अपने को अनेक अनेक रूप में देख रहे हो । यह अनेक रूप में एक ही है जैसे अलंकार अनेक ऊपर–ऊपर भासने पर भी सब एक स्वर्ण ही है । अनेकों लहरों के रूप में एक ही सागर लहरा रहा

है । जब सब रूप तुम्हारे है तो भय कैसा । रूप से हट कर अरूप की ओर चले । अरूप को पहचानने की चेष्टा करे और वह तुम ही मात्र साक्षी हो ।'**सर्वधी साक्षी भूतम**' '**साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च** '। दृश्य व द्रष्टा के अभाव का जो एक साक्षी रह जाता है वही तुम हो '**तत्त्वमसि**' । साक्षी में ठहरो, चेहरे को, तन को, रूप रंगको कम देखो । जो चेहरे की नकाब, ओढ़नी, चुनरी ओढ़े हुए है । जो शरीर के भीतर छिपा है उसे देखो । वह सब में एक हड्डी के ढांचे की तरह समान व्याप्त है । फिर मैं–तू, यह–वह, यहाँ–वहाँ का भेद नहीं रहता । शून्य में शून्य का जोड़, बाकी,गुणा सब एक शून्य ही है ।

परमात्मा का भजन तो तब अखण्ड हो सकता है जब तुम्हें यह बोध हो जावे कि परमात्मा मैं हूँ । तुम ही निरन्तर हो । दूसरे को बोध, होंश, ध्यान, चिन्तन कभी निरन्तर नहीं हो सकता । अभ्यास ही दुःख का कारण है । परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है ।

जब तक कुछ पाना है, होना है, करना है, कुछ देखना है तो समझो अभी तुम परमात्मा से दूर होना चाहते हो । जिसे तुम बाहर खोज रहे हो वो तुम हो । तुम्हारे पास है या भीतर है यह कहना भी उचित नहीं है । पालूंगा, सोचा तो चूक ही गये । वह दौड़ने से नहीं मिलता । केवल जाग जाना है आलस्य शिरोमणी हो जाओ । कुछ करना ही नहीं है । जिसे तुम बाहर खोज रहे हो वह परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद ही है, वही तुम हो ।

मोक्ष का अर्थ है अपने से पहचान और जो मैं नहीं उससे मुक्ति अभ्यास का अर्थ जो तुम नहीं वह होना चाहते हो । वह तुम कभी नहीं हो सकोगे । गंदा पुष्प गुलाब नहीं हो सकेगा । धन्य है वह लोग जो बोध मात्र से जाग जाते हैं कि मैं केवल द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ । बस इस प्रकार के दृश्य निश्चय मात्र की ही जरूरत है ।

जब तक आंखों पर चश्मा है परदा है तब तक कुछ भी मानते चलो किन्तु जब परदा हटेगा चश्मा उतार कर देखोगे तब सत्य जैसा है उसे देखोगे ।

जो दृश्य में उलझे हैं, वे अधार्मिक हैं । चाहे वह भगवान को सामने आकाश से उतरते क्यों न देखले । चाहे भक्त के सामने क्यों न खड़े हो जावे वह कल्पना मात्र है स्वप्न की तरह । अनुष्ठान करने की जरूरत नहीं । अनुष्ठान केवल थकाने के लिये है कि तुम चुपकर बैठ जाओ । भूल से तुम अलग नहीं हुए है सदा से जुड़े हो । परमात्मा से मिलने का प्रयास ही परमात्मा से दूर होने का भ्रम दृढ़ करता है । परमात्मा तुम्हारे साथ ही चल रहा है । उसे छोड़ने का कोई रास्ता ही नहीं । समझ पर्याप्त है । जागकर देखो । वही तुम हो । सब क्रिया का साक्षी है, साथ है । पूजा, प्रार्थना, रोना, पुकारना बन्द करो, वह तो तुम्हारे भीतर ही है, तुम ही हो । परमात्मा को पाने हेतु दान, पुण्य, तप, जप, करके पाने का भाव ही गलत है वह कोई वस्तु नहीं जिस दाम देकर ले सको । परमात्मा अकारण है । उसे पाने के लिये कुछ साधन रूपी मूल्य चुकाना नहीं कि इतना किया तब मिला लेकिन भरोसा नहीं आता कि बिना किये कैसे मिलेगा । फल, मिठाई, कपड़ा कुछ भी तो बिना किये नहीं मिलता । परमात्मा से छूट कर तो तुम जीवित नहीं रह सकोगे । मछली जल से अलग कर दी जावे तो मर ही जावेगी यही तुम्हारी दशा होती, यदि वह तुमसे अलग होता तो । परमात्मा मिलाही हुआ है ।

परम आत्मा से दूरी नहीं है दूरी विस्मरण से हो रही है । भूल मन की थी । जो नहीं था उसे अपना होना मान लिया । जो मैं था उसे जाना ही नहीं ।

तुम उसी राम से पत्थर की पूजा करा रहे हो, उसी से प्रार्थना भजन करा रहे हो उसी से राम-राम लिखा रहे हो । उसी को

धनुष बाण छोड़ कागज कलम पकड़ा दिया है । यह पाप ही कर रहे हो । इतनी कापी कलम बच्चों के कार्य आती उसे व्यर्थ नष्ट कर दिया । लिखने वाला राम ही है । कागज पर H_2O लिखने से प्यास नही मिटती । कागज पर राम–राम लिखना इसी प्रकार का निरर्थक कार्य है । जो लिख रहा है वही राम है उसे पहचानों । यह कौन है जो लिख रहा है राम–राम की रटन कर रहा है ।

संसारी सब पदार्थ घटते हैं । परमात्मा है । परमात्मा तुम हो । परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है । समाधि भी घटती नहीं । जिसका कारण है वह कार्य कभी भी नष्ट हो जावेगा । सम्भोगी, समाधि साधन साध्य नहीं है । वह विराट् है सहज समाधि साधन द्वारा नहीं है । परमात्मा ही देख रहा है और हम उसे देखना चाहते हैं ।

द्रष्टा की तरफ चले तब तुम धार्मिक हो । जिसने जानने वाले को जानालिया उसने सबको जानलिया । देखनेवाले को देखो । दृश्य रूप परमात्मा को खोजनने की आदत छोड़ो । जो भीतर से देख रहा है इन्द्रियों के द्वार से, उसे जानो कि वह कौन है ? वही धार्मिक है । वास्तविक धर्म का प्रारम्भ तभी होता है जब सबको जानने वाले को जानने का रास्ता अपनाया है । परमात्मा को दृश्य की तरह देखने की आदत छोड़े । अब उसे द्रष्टा की तरह जानो । दृश्य 'पर' है, द्रष्टा 'स्व' है । दृश्य बाहर है द्रष्टा भीतर परमात्मा है । परमात्मा वाह्य वस्तु नहीं है वह दृश्य नहीं है ।

परमात्मा को बाहर देखना ऐसा है जैसे चांद को पानी में देख रहे हो । दृश्य में जो दिख रहा है वह द्रष्टा की छाया है । धीर पुरुष दृश्य को नहीं देखते है, वे अविनाशी द्रष्टा को देखते हैं । देखने वाले को देखा, जानने वाले को जाना तो उसने सब देखलिया, सब को जानलिया । देह मन्दिर है परमात्मा भीतर है । द्रष्टा को देखने के लिये आंखे बंद करना होगी । दृश्य को देखने के लिये आंख खोलना

पड़ता है । दृश्य मात्र सपना है । अनदेखा वह अपना सब देखा आज तक केवल अपने को ही नहीं देखा था । अमृत तुम्हारे अन्दर है तुम बाहर विष खोज रहे हो इसे पी–पी मर रहे हो । परमात्मा जाज तक बाहर किसीको कभी नहीं मिला । जिसको मिला उसे अन्दर ही खोजने वाले देखने वाले जानने वाले जानने वाले अनुभव करने वाले के रूप में मिलाया ।

हठ पूर्वक चित्त का निरोध करने वाले मूढ का चित्त कभी नहीं ठहर सकेगा । करना ही बन्द करो ? करना मन का भोजन है । कुछ न करना मन की मृत्यु है । मन अपनी मृत्यु नहीं चाहता । कुछ न कुछ काम चाहता है चाहे राम राम लिखे या राम राम जपे ।

बिना साधन किये विचार मात्र से मुक्ति का अनुभव कर लेते हैं वे जीव धन्य है । जब तक ध्यान का अभ्यास छूटा नहीं तब तक तुम्हारी अवस्था कच्ची है स्वरूप में स्थित नहीं हुए । साधन का मतलब अपने सहज स्वरूप को, अपने सहज स्वभाव को प्राप्त करना अर्थात् जान लेना कि मैं सच्चिदानन्द, द्रष्टा, साक्षी, नित्य, मुक्त, आत्मा हूँ । भली प्रकार से सुनलिया तो घटना घट जाती है । सुनने के बाद कुछ करने को नहीं बचता । अभ्यास किस बात का करोगे कि मैं हूँ, मैं हूँ ? यह पागलपन मात्र है । सुना परिक्षित ने, सुनलिया हनुमान, अर्जुन ने बात पूरी हो गई । स्मरण हो गया कोई यात्रा नहीं । तुम ही मन्जिल हो । तुम ही वह हो । धीरे–धीरे होगा । कहने मात्र से कुछ नहीं होगा ऐसा यदि धारणा बनाई तो तुमने ठीक से सुना ही नहीं । जानलिया कि मैं हूँ तो अभ्यास करना बाकी रहेगा । कुछ भी नहीं शेष रहा । मां के गोद में बच्चा जैसा है वैसा ही चला जाता है । तुम जैसे हो परमात्मा वैसे ही अपना लेता है । जरा भी अन्यथा होने की जरूरत नहीं ।

साक्षी रहना ही ध्यान

जब क्रोध स्वभाव से उठे तो देखते रहो, काम जगे तो देखत रहो । वे अपने स्वभाव से उठे हैं बिना तुम्हारे निमन्त्रण दिये, ये अपने आप चले भी जायेंगे । यह जो कुछ मन में हो रहा है उसे देखते रहो, यह हो, यह न हो, ऐसा हो, ऐसा न हो इस प्रकार तुम कुछ भी निर्णय मत बनाओ । तुम कोई आकांक्षा मत रखो । तुम केवल देखते रहो । क्रोध उठे तो उसका अपमान न करो, तुम केवल उसे स्वीकार करो कि ठीक स्वाभाविक है । काम उठे तो कहो ठीक है, स्वाभाविक है । तुम द्रष्टा रहो, तनिक भी विचलित न होओ । तुम्हारा साक्षी भाव बना रहे, तुम द्वन्द्व के मध्य में ठहरो साक्षी में ठहरो । जो हो रहा है उसे देखने का अभ्यास बढ़ाओ । जैसा है उसको वैसा ही देखो । तुम अन्यथा न करना चाहो ।

साक्षी है सबेरा । कर्ता भोक्ता है अन्धेरी रात्री । जब तक तुम्हें अपने में कर्ता भोक्तापन लगता है तब तक तुम अन्धेरी रात्रि में यात्रा कर रहे हो । जब तुम साक्षीपन का अनुभव करते हो, तब तुम पूर्ण प्रकाश में हो। फिर तुम्हारा जीवन लीला मात्र हो गया । जब तुम मन से, शरीर से, प्राण से किसी दृश्य से अपने को एक कर लेते हो तभी तुम्हारी मौत है । यदि मन के पार हम अपने को साक्षी रूप जानलें तो फिर हमारी मौत कहाँ ? जब तुम मन ही नहीं, तब जो मन

में क्रोध उठा तो वह तुम कैसे हो सकते हो तब तुम इतना ही समझो कि मेरे मन में क्रोध उठा है मैं देख रहा हूँ । भूख–प्यास जगे तो मैं भूखा–प्यासा हूँ ऐसा न जान, ऐसा जानो कि प्राणों में भूख–प्यास जग रही है और मैं उसको जानने वाला हूँ, जान रहा हूँ । जब ऐसा कहते हो तब तुम अपने को शरीर, प्राण एवं मन से अलग ज्ञाता, द्रष्टा, साक्षी, आत्मा जान रहे हो ।

न तुम जीवन हो, न तुम मृत्यु हो । जीवन और मृत्यु दोनों के मध्य तुम साक्षी हो । यदि तुमने इन दो में से किसी एक को चुना तो दूसरा बिना स्वेच्छा के तुम्हें भोगना ही पड़ेगा । सम्मान–अपमान, लाभ–हानि, प्रेम–घृणा दो में से किसी एक को चुनते हो तो दूसरा सहज भोगना ही होगा । आना है निर्द्वन्द्व पर । जहां तुम्हें द्वन्द्व दिखाई पड़े तो तुम चुनना मत, दोनों के साक्षी हो जाना । तुमने अभी तक जो अपने को दूसरों की आंख से पहचाना था अच्छा–बुरा, कामी–क्रोधी वह तुम नहीं हो । कोई अन्दर एक अछूता, असंग इन द्वन्दों से दूर जो द्रष्टा है वह तुम हो ।

जिस दिन तुम्हारे मन में दूसरों से मिलने वाले सम्मान–अपमान का, अच्छे–बुरे होने का कोई मूल्य न हो उसी दिन तुमने अपने को जाना है, उसी दिन तुम साक्षी में ठहरे हो । अपने बारे में सुनकर जानकारी करलेना यह अपने को जानना नहीं है ।

आप प्रायः बासी ही भोजन कर रहे हैं । मेरे या बुद्ध, ओशो, कबीर, दादू, नानक आदि के वचन पढ़ सुनकर अपने को वैसा मान लिया है । ये अनुभव, ये वचन उनके हैं, तुम्हारे नहीं । 'हम आत्मा हैं' यह सब तो उनकी सुनकर दोहरा रहे हैं । आप अपनी कब कहेंगे ?

तुम अपने को जानलो कि तुम कौन हो । तुम केवल अपने को साक्षी रूप जानो । फिर जो होगा वही ठीक होगा । अपने को न जानने के पहले जो भी होगा वह बन्धन रूप ही होगा । साक्षी भाव में जागने से सब समस्याओं का समाधान हो जाता है ।

साक्षी भाव का मतलब जो तुम्हारे मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि वृत्तियां उठी और यदि तुमने उन्हें बुरा कहा कि यह भाव तो नहीं उठना चाहिये, यह भाव तो ठीक नहीं है, तब तुम साक्षी नहीं रहे बल्कि उन वृत्तियों के कर्ता बन बैठे । साक्षी भाव का मतलब है जो हुआ जैसा हुआ, ठीक ही हुआ क्योंकि तुम तो द्रष्टा हो कर्ता तो एक परमात्मा ही है । न अच्छा कहो न उसे बुरा कहो । यदि अच्छे या बुरे का निर्णय तुमने ले लिया तो तुम उस वृत्तियों के साथ जुड़ गये, कर्ता बन गये फिर तुम साक्षी नहीं रहे । तुम केवल देखते रहो । किसी भी दृश्य, कर्म या वृत्ति से जुड़ो नहीं न प्रेम, न घृणा, न राग, न द्वेष, न पक्ष, न विपक्ष, न अच्छा, न बुरा । वृत्तियों को उठते एवं शान्त होते देखते रहना ही साक्षी भाव का जागरण है इसे ही सहज ध्यान, सहज समाधि, सहजावस्था कहा जाता है ।

आत्म साक्षात्कार कोई त्याग या भोग नहीं है । आत्म जागरण का मतलब, साक्षी भाव का मतलब, द्रष्टा भाव का मतलब पर से, दृश्य से, अनात्मा से लौट स्व की ओर लौट जाना । जैसे मन में किसी अनुकूल विषय के द्वारा सुख प्रकट हुआ और तुमने मान लिया कि मैं सुखी हूँ । किसी प्रतिकूल विषय के कारण मन में दुःख प्रकट हुआ और तुमने मान लिया कि मैं दुःखी तो तुम अन्तःकरण के धर्मों के साक्षी न रहे बल्कि कर्ता बन गये जबकि सिद्धान्त है कि मैं अन्तःकरण '**मनो बुद्धिऽहंकार चित्तानि नाहं**' की कोई भी वृत्ति मैं नहीं हूँ और ऐसा हृदय से जानना ही साक्षी भाव का जागरण है ।

जैसे जैसे तुम साक्षी हो जाते हो बुराइयां बिदा हो जाती है । बुरा होने के लिये साक्षी की उपस्थिति बाधा पहुंचाती है । भला होने के लिये भी साक्षी की मौजूदगी बाधक है । तुम साक्षी तो तभी हो जब अच्छे बुरे दोनों के अहंकार से मुक्त होगये ?

साक्षी की धारणा कहती है न तो तुम पकड़ो, न तुम छोड़ो मात्र देखते रहो । तुम केवल जागते हुए देखते रहो । साक्षी भाव से

जो होगा वह सब ठीक है कर्ता भाव से जो भी होगा वह सब गलत है । साक्षी भाव से जो होगा वही शुभ है, मुक्त है । कर्ता भाव से जो होगा वही अशुभ है, वही बन्धन है ।

साक्षी का अर्थ है न तो कर्ता–भोक्ता रहे न चिन्तक । तुम कर्ता नहीं तो शरीर से पृथक् हो गये । चिन्तक नहीं तो तुम मन से पृथक् हो गये । इस शरीर और मन से अलग होते ही तुम आत्मा की गहराई में, पीछे चले गये, सबके पीछे, जिससे पीछे कोई नहीं उसे ही वेद साक्षी कहता है । वह साक्षी ही ब्रह्म है वही तुम हो । साक्षी का अर्थ है मन को लुटा देने की कला, मन को मिटा देने की कला ।

साक्षी भाव में किसी कर्म का कोई मूल्य नहीं । यदि कोई शराब भी पीले साक्षी भाव में तो कोई अन्तर नहीं पड़ता । मैं शराब पीने के लिये नहीं कह रहा हूँ । लेकिन साक्षी भाव पर ध्यान रखना । नहीं तो तुम सोचलो कि हम तो साक्षी हो गये, पीलें शराब । तो पीने की, भोगने की जब तक कामना है तब तक आप साक्षी नहीं हुए ।

साक्षी का इतना ही अर्थ होता है कि जो होता है, उसे हम होने देते हैं और देखते हैं। हम देखने वाले द्रष्टा हैं, कर्ता नहीं हैं जब तक तुम वासना कर रहे हो वस्तुओं की तब तक तुम कर्ता रहोगे जब तुम परमात्मा भाव में उतरने लगते हो, तब तुम साक्षी होने लगोगे ।

साक्षी सूत्र है । तुम समस्याओं के पीछे मत पड़ो, समस्याओं को सुलझाने के चक्कर में समय नष्ट न करो । तुम समस्याओं के पीछे खड़े हो जाओ समस्यांए गिर जायेंगी । समस्त समस्याओं के बीच से अहंकार सूत्र को खींच लो । अहंकार सूत्र को खींचते ही सब समस्या रूपी गुरिये गिर जायेंगे । यह अहंकार अनेक समस्याओं के बीच एक ही सूत्र है । मैं देह हूँ, मैं मन हूँ इस मूल झूठ की मान्यता के कारण हजार–हजार झूठों की कतार खड़ी हो जाती है । तुम अनेक से मत लड़ो, जीत नहीं पाओगे । तुम केवल देहाभिमान को खींचलो बस मैं

साक्षी हूँ, मैं द्रष्टा हूँ यह निश्चय बनालो इतने में ही तुम कृतार्थ हो जाओगे । करके आज तक कभी कोई कृतार्थ नहीं हो सका है । मैं कर्ता नहीं हूँ, यह भावना दृढ़ होते ही तुम कृतार्थ हो जाते हो । '**एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय**' । जड़ है अहंकार, तुम सीधे जड़ को काट दो । ऐसा पुरुष देखता हुआ, सुनता हुआ, सूंघता हुआ, खाता हुआ सुख पूर्वक रहता है फिर उसे कुछ छोड़ने की, कुछ पकड़ने की झंझट नहीं रहती है । जो मिल जाता है, स्वीकार है । जो नहीं मिलता है वह भी स्वीकार है । जो होता है होने देता है । उसका जीवन सहज हो जाता है । जिस दिन तुम ऐसे हो जाओ कि तुम किसी के पाससे निकल जाओ और उसे पता भी न चले । सहज आदमी बाहर से पहचान में नहीं आयेगा ।

तुम द्रष्टा, साक्षी, निराकार, अशरीरी आत्मा हो । तब क्या आप आज तक चले हो ? शरीर चलता है, मन सोचता है, वाणी बोलती है, प्राण खाते हैं तुम इन सबके पार, सब क्रियाओं के पीछे केवल साक्षी–रूप हो ।

तुम्हारे भीतर उसे खोजो जिसके पार तुम न जा सको । पदार्थ के पार प्रकाश मिल जाता है, प्रकाश से पार नेत्र मिल जाते हैं, नेत्र के पार मन मिल जाता है । मन के पार बुद्धि मिल जाती है, बुद्धि के पार जीव मिल जाता है एवं जीव के पार साक्षी मिल जाता है अब साक्षी के पार जाने को कुछ बचता नहीं, कोई उपाय नहीं । बस यह सर्व का जो साक्षी है, इस साक्षी का अन्य कोई द्रष्टा, साक्षी नहीं है और वही तुम साक्षी आत्मा हो ।

तुम आंख बंद करो, शरीर को देख सकते हो, हाथ हिलाओ अगुंली उठाओ उन्हें देख सकते हो, गिन सकते हो । सिर, पेट, पांव, कान, दांत आदि में दर्द है तुम जान सकते हो । मनके विचार को देख लेते हो; तुम इन समस्त इन्द्रियों, दर्द, सुख–दुःख, अच्छे–बुरे,

सुन्दर–असुन्दर, खट्टे,मीठे, कड़वे, तीखे, गरम–शीतल भेद को जान लेते हो तो तुम इन्हें देखने वाले हो, तुम साक्षी हो । अब तुम इन सर्व साक्षी स्वयं के पीछे न जा सकोगे, क्योंकि साक्षी को भी देखोगे तो तुम साक्षी ही रहोगे । शरीर को देख लिया तो तुम शरीर न रहे, मन को देख लिया तो तुम मन नहीं रहे । इसी प्रकार तुम साक्षी को देख नहीं सकोगे, साक्षी से दूर नहीं जा सकोगे, हर अवस्था में साक्षी ही रहते हो यही तुम्हारा साक्षी भाव है । यही समस्त बुद्ध पुरुषों की चिन्तन माला का सूत्र है । इस साक्षी भाव का सूत्र जिसके हाथ में आगया उसके लिये समस्त विरोध शून्य हो जाते हैं । साक्षी भाव में शुभ–अशुभ दोनों शांत हो जाते हैं, तुम दोनों से पार हो, तुम दोनों के देखने वाले हो । साक्षी में 'तू व मैं' भी नहीं बचेगा क्योंकि तुम 'तू व मैं' के भी साक्षी हो ।

अभी देखो, मैं बोल रहा हूँ, तुम सुन रहे हो । अगर तुम साक्षी हो तो तुम बोलने वाले मुझको एवं सुनने वाले तुम दोनों के पार होगये । तुम अपने सुनने के भी साक्षी हो जाओगे जैसे तुम मेरे बोलने के साक्षी हो । इसी प्रकार तुम अपने सुनने वाले के भी साक्षी हो । बोलने व सुनने इन दोनों के पार जो है वह साक्षी है, वही तुम हो ।

साक्षी समस्त वेद, शास्त्रों का सार है । साक्षी के लिये अलग–अलग शब्दों का प्रयोग किया गया है । कहीं ध्यान, कहीं सुमिरन, कही स्मृति कहीं याद, कहीं समाधि, कहीं निर्वाण, कहीं मोक्ष । भाव इतना ही है कि तुम दृश्य से छूटते जाओ, हटते जाओ । पीछे होते चलो और द्रष्टा में डूबते जाओ । जो दिखायी पड़े जानना तुमसे अलग है और जो देखने वाला है उसे जानना कि यही मैं हूँ । धीरे–धीरे समस्त दृश्य समाप्त हो जावेंगे, जब देखने को कुछ न बचे वहाँ द्रष्टा ही बचेगा, साक्षी ही बचेगा ।

जहां भी जाओ, जो भी देखो, जो भी हो तुम्हारा स्वभाव साक्षी का ही रहे । बस हाथ आगया परमात्मा क्योंकि वही तो साक्षी

है '**सर्व धी साक्षी भूतम्**' । प्रज्ञा को निखारो, साक्षी बनो, जो भी करते हो साक्षी होकर देखो, श्वांस भी चले तो देखते हुए चले, हाथ उठे या पैर उठे तो देखते हुए हिले डुले । साक्षी को जिसने साधा उसकी तृष्णा मिटी ।

साक्षी भाव ही ऐसी साधना है जो मन की साधना नहीं है । किसी क्रिया से, किसी साधना से हम मन के पार नहीं जा सकेंगे । परमात्मा में प्रतिष्ठित नहीं हो सकेंगे । साक्षी भाव ही परमात्मा से एकत्वता का बोध कराने में सरल साधना है ।

हम प्रति दिन यह देखते हैं कि रात स्वप्न हुआ प्रातः उसका स्मरण रह जाता है स्वप्न झूठा हो जाता है किन्तु उसका स्मरण कर्ता वह सत्य है, स्वप्न भी चला जाता है सुषुप्ति आ जाती है । सुषुप्ति भी जाग्रत होने पर चली जाती है । मूर्च्छा होती है वह भी टूट जाती है, ध्यान लगता है वह भी छूट जाता है, समाधि होती है वह भी पुनः छूट जाती है किन्तु सभी परिवर्तनों का देखने वाला 'दर्शन' सब समय बना रहता है । जानने, देखने वाला दर्शन नित्य है, वह साक्षी है वह तुम हो ।

बचपन आया–गया, किशोरावस्था आई–गई, जवानी आई–गई, प्रौढावस्था आई–गई, वृद्धावस्था आई–गई, रोग आया–गया, गरीबी आई–गई, याद रही–भूल गये, सर्दी आई–गई, गर्मी आई–गई, वर्षा आई–गई किन्तु दर्शन की क्षमता, देखने जानने की हमारी क्षमता सब परिस्थितीयों में, अवस्थाओं में, कालों में, क्रियाओं में बनी ही रहती है । साक्षी भाव हमारा स्वभाव सदा बना ही रहता है । इन्द्रियां अपना–अपना विषय ग्रहण करने में थक जाती है । सुनना, छूना, देखना, चखना, सूंघना आदि क्रियाएं इन्द्रियां सदा नहीं कर सकेंगी किन्तु आपका दर्शन, ज्ञान, चेतन स्वभाव का कभी अभाव या उस में थकावट नहीं होती पावेंगे । देखने, जानने की क्षमता हममें अवच्छिन्न रूप से सर्वदा बनी रहती है ।

रात्रि सोकर जब आप उठते हैं तब वहाँ जो जीव को एक निर्विषय सुख व अज्ञानता का अनुभव हो रहा था उसे भी कोई एक पीछे से अवश्य देख रहा होता है । तभी तो सुबह उठकर उस जीव के द्वारा मन, वाणी के माध्यम से यह कहा जाता है कि रात मैंने गहरी नींद का अनुभव किया, कि रात मुझे एक अच्छी मीठी सुख रूप नींद आई व मुझे कुछ पता नहीं चला । इस गहरी नींद रूप सुषुप्ति का भी प्रकाशक, जानने वाला, देखने वाला कोई साक्षी, द्रष्टा, आत्मा है जो समस्त परिवर्तनों में अपरिवर्तनशील बना रहता है और यही तुम हो ।

यह जो साक्षी है, यह जो विटनेस है, यह जो द्रष्टा है, यह जो बोध का बिन्दु है, यह मन के बाहर है । यह मन की क्रियाओं का हिस्सा नहीं है, यह तो वह बिन्दु है जो हमारे मन की अवस्थाओं को देखने वाला है । हम जिसे भी जानते हैं वह देह हो या देह की क्रिया हो, मन हो या मन के विचार हों हम उसको जानने वाले उससे सदा पृथक् ही रहते हैं ।

साक्षी को आप कभी नहीं देख सकेंगे । जो देखेगा वह तो आप ही होंगे एवं जो दिखाई पड़ेगा वह आपसे भिन्न जड़, विकारी, परिच्छिन्न, अनात्म पदार्थ ही होगा । देखने वाला ही चैतन्य द्रष्टा कहलाता है । साक्षी भाव आत्मा में प्रवेश का द्वार है । पूर्ण साक्षी भाव की स्थिति आत्म उपलब्धी है । जो दृश्य बन जाएगा वह फिर अनात्मा ही होगा । तुम द्रष्टा ही आत्मा रहोगे । साक्षी आपका स्वरूप है । जिसको भी आप देख सकते हैं, जान सकते हैं, अनुभव करलेते हैं, उससे आप जानने, देखने, अनुभव करने वाले अलग हो जाते हैं। क्योंकि आप उससे अलग ही हैं तभी तो आप उसे देखपाते हैं, जान पाते हैं, अनुभव करपाते हैं ।

साक्षी का मूर्च्छित होना ही मन कहलाता है या चित्त कहलाता है । यदि साक्षी पूर्ण रूपेण जाग जावे तो मन या चित्त नाम की कोई वस्तु ही नहीं है । जितनी मात्रा में आपमें साक्षी भाव जाग्रत

हो जावेगा आप उतना ही अपने को मन से बाहर अनुभव करेंगे । साक्षी भाव के जाग जाने का नाम ही अ–मन है ।

जो बिना इन्द्रिय, बिना मन के सीधा जानता है उसी को साक्षी कहते हैं । जो साक्षात् (स्वयं) जानता है उसे साक्षी कहते हैं ।

शरीर जल रहा है तो उसे जलने नहीं देना उसे बचाना है, उपचार करना है किन्तु साक्षी देख रहा है कि शरीर में, मन में कष्ट हो रहा है मैं केवल साक्षी हूँ ।

जब तक कर्ता भाव है तब तक ध्यान नही होगा । द्रष्टा हो जाना, साक्षी हो जाना ही ध्यान है, साक्षी हो जाना ही समाधि है । साक्षी का साक्षी नहीं होता । कर्ता छूट जाना ही अहंकार शून्य होना है ।

साक्षी हमारा स्वभाव है साक्षी का कोई अन्य द्रष्टा साक्षी नहीं है । ध्यान मार्ग है, साक्षी मन्जिल है । साक्षी भाव का कारण ध्यान है । अष्टावक्र ध्यान समाधि एक ही मानते हैं । जो बात, कृष्ण कहते हैं, वही बात उपनिषद, रामायण, गीता आदि भी कहते हैं कि केवल उसे ठीक से सुनकर जानलो बस हो गया काम । अन्य कुछ नहीं करना है । **''जानत् तुमहि तुमहि होई जाई'' '' ज्ञानादेव तु कैवल्यम्'' ''तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति, ज्ञात्वा देवं सर्व पाप हानि । ''**

परमात्मा को साक्षी रूप में ही जाना जा सकता है । जो तुम्हारे मन के भीतर छिपा है । वह दृश्य बनता नहीं है, सबको बनाने वाला, जानने वाला एक परमात्मा है वह अन्य नहीं, तुम हो । ऐसा जानने वाला कभी अशान्त नहीं हो सकता । वह फिर हर अवस्था में शान्त, प्रसन्न रहेगा । जो भी होता है, जैसा भी होता है, ठीक ही हो रहा है, क्योंकि वही तो करता है, वही तो भोगता है । जब वह एक ही है तो किसका ग्रहण करे, किसका त्याग करे । किससे आशा रखे । किससे उसे निराशा मिलेगी ? किससे सम्मान चाहेगा ? किससे उसे अपमान मिलेगा ? ऐसा जानने वाला सदा सन्तुष्ट रहता है । समय पर

सूर्य दर्शन, पुष्प, फल, सन्तान, वर्षा, गर्मी, सर्दी सब कुछ होते हैं । अतः धैर्य रखो, प्रतिक्षा करो सब समय पर होता है । मानापमान, सुख–दुःख, संयोग–वियोग, लाभालाभ, जयाजय, दिन–रात, सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास सब को देखते रहो और जो होता है उसके साक्षी रहो ।

सूर्य उदय हो जाने पर अन्धकार नहीं इसी तरह साक्षी भाव हाने से दुःख नहीं । दुःख होता है देह, मन, बुद्धि, कर्म, भोग सुख–दुःख से तादात्म्य करने से । साक्षी भाव जग गया तो दुःख भी गया ।

नदी पार होने के लिए तैरना आना अनिवार्य कला है । इसी तरह भव सागर पार होने के लिये साक्षी भाव, द्रष्टा भाव, असंगता आना भी जरूरी है ।

अगर तुम मन के कर्मों के प्रति साक्षी भाव द्रष्टा भाव को उपलब्ध हो गये तो वह कर्म भी धर्म का अंग हो जाएगा ।

कर्ता भाव छूट जाना ही स्वस्थ हो जाना है । कर्म छोड़कर भागने की जरूरत नहीं, कर्ता भाव छूट जाना ही आवश्यक है । बुद्ध ने रुक कर पाया छोड़कर या दौड़कर नहीं पाया । परमात्मा तो दौड़ने वाले के साथ ही दौड़ रहा है ।

साक्षी में न तो शरीर की जरूरत है, न मन की जरूरत है, शुद्ध ब्रह्म, जो तुम्हारे भीतर छुपा है वह मैं हूँ ऐसा जानना ही उसका सीधा साक्षात्कार है ।

ज्ञानी केवल भोगता है अज्ञानी कहाँ भोग पाता है, वह तो रोता–झींखता है । जो अपने में, आत्मा में, साक्षी में, द्रष्टा में ठहर गया वह तो तत्काल मुक्त हो गया । जो करता है फिर भी उस कर्म में कर्ता का भाव नहीं रहता एवं जो भोगता है फिर भी उस भोग में भोक्ता का भाव नहीं रहता, ऐसा ज्ञानी ही साक्षी भाव को प्राप्त हुआ जानो । अगर तुम उस अनिर्वचनीय दशा को जानना चाहते हो तो

चलो साक्षी भाव में । जानने की प्रक्रिया है साक्षी । जागोगे तो जानोगे । सोये रहे तो नहीं जान पाओगे ।

अहंकार है तो तुम कुछ न करो तो भी कर्म है, अहंकार नहीं तो सब कर्म होकर भी तुम अकर्म में स्थित हो । अहंकार रहित होने का मतलब अब तुम कर्ता नहीं । अब परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठ कर रहा है या करवा रहा है । परमात्मा कर्ता है तुम कर्ता नहीं । सूखे पत्ते को पवन जिधर ले जाय वह उधर उड़जाता है । ज्ञानी से जो कर्म प्रकृति करवाए वह उससे होता है स्वयं कुछ नहीं करता, कर्म को अकर्म में नहीं बदलना है, बल्कि कर्ता को अकर्ता में बदलना है । अहंकार छोड़ना हैं कर्म नहीं छोड़ना । लोग कर्म छोड़ते है किन्तु 'मैं' 'अहंकार' को नहीं छोड़ते । कर्तापन के अहंकार को कोई नहीं छोड़ना चाहता है ।

साक्षी हुए कि अकर्ता हुए । अकर्ता हुए तो सभी प्रकार की कर्म सम्बन्धी चिंता अहंकार समाप्त हो जायेंगे । सफलता असफलता की चिन्ता समाप्त जहां तक कृत्य है, कर्ता भाव है वहां तक चिंता है । साक्षी का अर्थ है अब हम कुछ नहीं करेंगे ।

साक्षी के सम्मुख मन नहीं होता । साक्षी के न रहने पर कर्ता होता है एवं मन पूर्ण स्वच्छन्द विचरता है ।

सारे वेद उपनिषद का यहि उपदेश है कि तुम अपने को अद्वय जानलो, एक हो जाओ, दो न रह जाए, रात और दिन, सुख और दुःख, जीवन और मृत्यु, निन्दा व स्तुति, हर्ष व शोक, मान व अपमान तुम्हें इन दोनों में समता भाव आजाए तुम इन दोनों के एक साक्षी हो जाओ । सुख को भी देखो और देखते क्षण में सुख के भोगी न बनो, केवल देखने वाले रह जाओ उस मिलने वाले सुख से तादात्म्य स्थापित मत करो । ऐसा मत सोचो कि मैं इसे पाकर सुखी हो गया इतना ही कहो कि मैं सुख को प्रकट होते देख रहा हूँ । तुम्हारा देखना

अछूता रहे । कर्ता भोक्ता भाव में मत उलझना । दुःख आए तब भी देखना । कांटे मिले या पुष्प मिले देखते रहो । धीरे–धीरे अपने द्रष्टा में स्थिर हो जाओ, केन्द्र पर खड़े हो जाओ । अकम्प रहो । उसी अवस्था को ब्रह्म, मोक्ष, निर्वाण, सत्य, साक्षी, द्रष्टा कहते हैं उस शान्त दशा या शून्य दशा को जो जानता है वही जानने योग्य है, वही सच्चिदानन्द है । जो भी तुम्हारे सम्मुख देह संघात् द्वारा हो रहा है तुम उसके साक्षी हो जाओ ।

जब तक कोई भीतर द्वन्द्व उठ रहा है हेय–उपादेय विषय का ग्रहण–त्याग हो रहा है तब तक जानना कि यह साक्षी की स्थिति, ध्यान की स्थिति नहीं है, अभी संसार ही चल रहा है । चाहे वह दृश्य शुभ है या अशुभ है, सुन्दर हो या असुन्दर हो तुम देखते रहना यह सब दिखनेवाला अनित्य संसार ही है, मन की माया है । तुम मन के जाल में मत फंसना । मन के विचारों को, विकारों को, चंचलता को अपना होना न समझना । असंगता पूर्वक् मन एवं उसके विचारों को देखना । मन के साथ जुड़े सभी अहंकारों से अपने को मुक्त कर लेना । स्वयं में स्थित होकर अपने द्रष्टा साक्षी चेतन आत्म तत्त्व में जागते रहना ।

जैसे सूर्य जगत् के समस्त शुभाशुभ दृश्यों को प्रकाशित करता हुआ स्वयं सब दृश्यों से घटनाओं से, क्रियाओं से, उनके फल से असंग रहता है । वैसे ही मैं आत्मा रूपी सूर्य अन्दर सदा प्रकाशवान हूँ । मेरे प्रकाश में यह मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ अपना–अपना कार्य करते रहते हैं परन्तु मैं इन के खेल से पृथक् द्रष्टा साक्षी होकर देखता चला आरहा हूँ ।

जो हो रहा है उसे स्वीकार करना ही आस्तिकता है । शुभ अशुभ सब देख रहा हूँ । देखते रहना कि कहीं मैं मन के किसी भी कार्य में बाधा तो नहीं पहुँचा रहा हूँ । मन–बुद्धि रूपी जीव जैसा करेंगे उन्हें उसका फल एक दिन भोगना ही पड़ेगा । परमधन, परमानन्द,

परमशान्ति भीतर है । भीतर से साक्षी भाव जागेगा तभी कर्ता पन का अभिमान विलीन होगा जब तक साक्षी भाव भीतर नहीं जागा है तब तक तुम हजारों बार गीता, उपनिषद पढलो, कर्तापन का अभिमान दूर नहीं होगा । हर क्षण देखते रहना, हर क्रिया को देखते रहना । मन को समझाना नहीं, तुम अपने केन्द्र साक्षी भाव में रहना । वहीं ध्यान है । मन को समझाने की, रोकने की कोशिश मत करना । मन को उसके विचारों को रोकना नहीं, मोड़ना नहीं, कहीं जोड़ना नहीं, दबाना नहीं । तुम मात्र केवल देखते रहना । अन्दर बहुत प्रकार के विचारों के विकल्पों का जाल बिछा है तुम किसी के साथ तादात्म्य मत करना । तुम केवल देखते रहना । तटस्थ, कूटस्थ होकर तुम साक्षी चेतन होकर देखते रहना । मन से हटकर मन की गति को देखते रहना ।

जैसे जैसे तुम साक्षी हो जाते हो बुराइयां बिदा हो जाती है । बुरा होने के लिये साक्षी की उपस्थिति बाधा पहुंचाती है । भला होने के लिये साक्षी की मौजूदगी बाधक है । साक्षी तो तभी जब अच्छे–बुरे दोनों के अहंकार से मुक्त है ?

सुख होता तो मैं जानता हूँ, दुःख होता है तो मैं जानता हूँ, लेकिन मैं सुख नहीं हूँ और न मैं दुःख हूँ । जैसे सुबह–शाम होती है इसी तरह सुख–दुःख होते हैं । मैं पृथक् हूँ और समस्त अनुभव मुझसे अलग है । मैं केवल साक्षी हूँ ।

पहुंचे की पहचान

एक कसौटी ख्याल रखना । जो सामने अनुभव में आ रहा है वह तुमसे अलग है, तो समझना अभी असली मंजिल नहीं आयी है यह तुम्हारी प्रारम्भिक अवस्था है । ध्यान में प्रकाश दिखाई पड़े तो जानना अभी मंजिल नहीं पहुंचे हैं । कुण्डलनी जाग्रत हो, समझना मन्जिल पर नहीं पहुंचे हैं । ज्योति दर्शन हो समझना मन्जिल पर नहीं पहुंचे हैं । राम, कृष्ण, देवी–देवता कल्पित रूपों का दर्शन हो तो समझना अभी मन्जिल नहीं आयी है । यह सब अनुभव मन के हैं । परमात्मा तो दृश्य नहीं है वह तो देखने वाले में, खोजने वाले में, प्रार्थना करने वाले में, ध्यान करने वाले में छिपा है । वह कभी भी बाहर दिखायी नहीं पड़ेगा । जो दिखायी पड़ेगा वह तुम्हारे मन का स्वप्न है ।

जब तक बाह्य विषयों में रस दिखाई पड़े तब तक जानना दृष्टि भीतर की ओर सत्य की ओर नहीं मुड़ी है । ज्ञानी जानता है कि मेरी दृष्टि में सुख है । मैं जहाँ, जिसपर दृष्टि डालता हूँ और जबतक डालता हूँ वह पदार्थ, स्थान, व्यक्ति तभी तक सुख रूप लगता है । और जब यह समझ आ जाए कि सुख रूप मैं हूँ तब किसी में सुख के लिये दृष्टि डालना ही क्यों ? जब तक ऐसी स्थिति नहीं हुई है तब तक मन असंयत ही रहेगा ।

अगर तुम दुःखी हो, तो ध्यान रखना तुमने गलत दिशा पकड़ रखी है । दुःख बढ़ता जा रहा है तो साक्षी भाव में जीना नहीं आया है । अभी मन्जिल पर नहीं पहुंचे हो । अपने दुःख के लिये किसी अन्य को दोष मत देना ।

परमात्मा को, आनन्द को तुम बाहर खोजते तो मन्दिर, तीर्थ, ध्यान, समाधि में जाते होते किन्तु परमात्मा कभी खोया नहीं विस्मरण हुआ है सिर्फ स्मरण में आना है । खोगया होता तो उस चैतन्य के बिना तुम कभी नहीं खोज पर निकल पाते । वह तुम हो जिसे तुम खोज रहे हो । तत्त्वज्ञानी पुरुष इधर–उधर पूजा, पाठ, तीर्थ, मन्दिर, ध्यान, समाधि कुण्डलनी जाग्रत के साधन जाल से मुक्त रहते है ।

ज्ञानी पुरुष कभी नहीं मरते । मरते तो अज्ञानी भी नहीं है किन्तु अज्ञानी ने अपने को अमृत आत्मा न जान मृत शरीर मान लिया है इसलिये अज्ञानी को मरना पड़ता है । ज्ञानी का देह भी मरेगा । जो जन्में है वह निश्चित मरेंगे । ज्ञानी जानता है मैं देह नहीं हूँ मैं अमृत आत्मा हूँ मेरी मृत्यु कभी नहीं हो सकती । तुम मान लेते हो मैं मर गया तो तुम मर गये । प्रसिद्ध है '' **जैसी मति वैसी गति**'' ।

ज्ञानी पुरुष तुम्हारे द्वारा या शरीर अपने के सुख–दुःख से जरा भी प्रभावित नहीं होता और जो होता है, वह ज्ञानी नहीं है । जब बुद्ध पुरुष तुम्हारे दुःख में तुम्हें सहानुभूति दिखलाते हैं तो एक नाटक है, सौजन्यता वश ताकि तुम्हें बुरा न लगे । पीड़ा न हो और तुम्हें भी जगाते रहते है कि छोड़ो यह सब माया है अब जागो । कब तक सोते रहोगे । अन्दर से हंसता है क्योंकि मरना, जीना, जन्म दिवस, विवाह आदि सब झूठे खेल है ।

मैं अब ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूँ ऐसी बुद्धि भी जिस ज्ञानी को नहीं होती, वही कृतार्थ हुआ जानो । मैं कृतार्थ हुआ इसमें भी मैं का अहंकार खड़ा है अभी वह द्वैत के बाहर नहीं हुआ है । दूसरों

से वह कहेगा तुम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए हो, मैं ज्ञान को प्राप्त कर चुका हूँ इस कथन में द्वन्द्व, द्वैत मौजूद है । मैं आत्मज्ञानी, तुम अज्ञानी इसमें भी मैं, तू का फर्क मौजूद है ।

ज्ञानी कभी नहीं कहेगा कि मैं जानता हूँ । जब ज्ञानी तुमसे कहे मैं कामी हूँ, क्रोधी हूँ, अज्ञानी हूँ और फिर भी तुम उसके पास ठहर जाओ तभी तुम परम ज्ञानी के पास टिक पाओगे । तो ही तुम किसी ज्ञानी का सत्संग पाओगे । दम्भी, दावेदार बहुत है, सच्चे ज्ञानी बहुत थोड़े हैं । जिसको ज्ञान हो जाता है वह चिल्लाता नहीं है ।

जो साक्षी हो गया उसे दिखाई पड़ता है कि मेरे किये कुछ नहीं होता, सब हो रहा है मैं व्यर्थ ही आज तक कर्ता बन बोझ ढ़ोता आरहा था । ज्ञानी का मतलब है जो अपनी तरफ से कुछ नहीं करता । तुम ज्ञानी को न कर्मठ कहना न आलसी कहना । ज्ञानी अपने तरफ से कुछ होता ही नहीं, बनता ही नहीं जो प्रकृति चाहती है उससे कराती रहती है ।

ज्ञानी तीर्थ है । ज्ञानी के आस पास तीर्थ की सुगन्ध फैली रहती है वहाँ जीव का अन्तरात्मा शुद्ध हो जाता है । अन्दर उसके ज्ञान की गंगा अहर्निश बहती रहती है । बाहर की गंगा तो शरीर की मैल, धूल बहाती है । लेकिन चैतन्य की ज्ञान गंगा से तुम्हारा चैतन्य, तुम्हारा आत्मा भी स्नान कर लेगा ।

ज्ञानी केवल भोगता है अज्ञानी कहाँ भोग पाता है, वह तो रोता झींखता है । जो अपने में, आत्मा में, साक्षी में, द्रष्टा में ठहर गया वह तो तत्काल मुक्त हो गया । करता है फिर भी कर्ता का भाव नहीं रहता, भोगता है फिर भी भोक्ता का भाव नहीं रहता, ऐसा ज्ञानी ही साक्षी भाव को प्राप्त हुआ जानो । अगर तुम उस अनिवर्चनीय दशा को जानना चाहते हो तो चलो साक्षी भाव में । जानने की प्रक्रिया है साक्षी । जागोगे तो जानोगे । सोये रहे तो नहीं जान पाओगे ।

ज्ञानी ज्ञान में जीता है, कर्म में नहीं । अज्ञानी अज्ञान में जीता है ज्ञान में नहीं । जो तुमसे कहता है संसार में जाने में खतरा है । गये कि, फंस जाओगे । ऐसा जो कहते हैं, उन्हें डर है कि वहाँ उनको तृप्ति मिल गई तो फिर वे मोक्ष की इच्छा छोड़ देंगे । जैसे पृथ्वी व आकाश का मिलन कभी सम्भव नहीं इसी तरह संसार में किसी को कभी तृप्ति मिलना सम्भव नहीं ।

मैं तुमसे कहता हूँ जाओ संसार में, खूब भटको, देखो, भोगो संसार को । भटकने भोगने में कंजुसी मत करना ताकि जब लौटोगे तो पूरे लौटोगे फिर पीछे मुड़कर संसार को नहीं देखोगे । जैसे सांप कैचुली छोड़ देता है तो फिर उसे लौटकर नहीं देखता, उसमें फिर नहीं घूसता ।

अज्ञान में जो–जो होता है वह ज्ञान में भी होता है कारण दोनों के केवल अलग–अलग होते हैं, लेकिन कार्य वहीं के वहीं दोनों के होते है ।

ज्ञानी से परमात्मा जो करवाता है वह कर देता है । जो नहीं करवाते वह नहीं करता है । उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है ।

ज्ञानी सुख–दुःख में, सम्मान–अपमान में, लाभ हानि में, संयोग–वियोग में निर्विचार बना रहता है । जो होता है उसे देख लेता है । तटस्थ बना रहता है । उस घटना को बहुत मूल्य नहीं देता । वह सन्ताप से मुक्त हो जाता है ।

जिसके जीवन में परमात्मा व आत्मा का भेद समाप्त हो गया है वहाँ गुरु शिष्य का भेद भी गिर जाता है । न कोई आत्मा न कोई परमात्मा । यहाँ न कुछ अपना है, न पराया है । सब उसका है । सब एक का है । यह मैं–तू का भेद कल्पित है । जो मैं में मौजूद है वही तू में भी मौजूद है। जब तक दो है तब तक अज्ञान ।

जो हो, जैसा हो उसमें स्वस्थ, प्रसन्न रहे ऐसे व्यक्ति के जीवन में अशान्ति कैसे होगी । मुक्त पुरुष न स्तुति किये जाने पर

प्रसन्न होता है न निन्दा करने पर दुःखी होता है, न मृत्यु में कोई विरोध है न जीवन में कोई आग्रह है । निंदा भी तुम करते हो तो तुम जानो, स्तुति भी तुम करते हो तो तुम जानो । वह अडोल, अचल, अकम्प अपने साक्षी स्वरूप में स्थित रहता है वह सब अवस्था से, कर्म से, भोग से बाहर हो चुका है ।

ज्ञानी कभी नहीं कह सकेगा कि मैंने खोज लिया है, न खोज रहा हूँ कहेगा । क्योंकि जब तुम जागोगे तब तुम पाओगे कि जो तुमने पाया है उसे तुमने कभी खोया ही नहीं था । इसलिये खोज लिया कहना व्यर्थ है । ज्ञानी तो इतना ही कह सकता है कि जो पहले से ही था किन्तु उस ओर देख नहीं पाया था अब मैंने उसे देखलिया । ज्ञानी कभी जरूरत पड़ने पर अहंकार, क्रोध, काम, लोभ का भी उपयोग करलेता है । परन्तु हर हाल में जो भी ज्ञानी से होता है ज्ञानी उससे बाहर बना रहता है । ज्ञानी न सुख से जुड़ता है न दुःखसे । सुख–दुःख मन के भोग है । ज्ञानी साक्षी है ।

चरित्र प्लाष्टिक के फूल है ऊपर से चिपका लिए है । अन्धानुकरण है । दूसरों को दिखाने के लिए अच्छे हैं लेकिन शील अपना मालिक है । चरित्र अपना मालिक नहीं, वह दूसरे की गुलामी है । राम व कृष्ण का शील दिखाई पड़ता है कृष्ण ने राम के चरित्र का अनुकरण नहीं किया । जब कभी तुम्हें जीवन में कोई शीलवान महापुरुष मिलजाए, तो समझलेना यही चरण पकड़ लेने जैसे हैं । चरित्रवान के धोखे में मत आजाना, क्योंकि चरित्रवान तो ऊपर–ऊपर है, भीतर उसके सब विपरीत चल रहा है ।

बुद्ध जैसा व्यक्ति पृथ्वी पर जब भी आता है तो क्रान्तिकारी आंधी लेकर आता है जो हमारी समस्त अन्ध विश्वास की जड़ों को उखाड़ देती है । मान्यताओं के महल को गिरा देती है और हमारे लिये छोड़ देती है हमारी शुद्धता, निजता । मन से सब बिदा हो जाती है

भीड़ भाड़ । समाज के भेड़ चाल और प्रथम बार व्यक्ति जानता है शुद्ध व्यक्ति होना ।

जिससे बचने का कोई उपाय नहीं उस मृत्यु को स्वीकार करो । उससे बचने की व्यर्थ कोशिश न करो । जो है उसे मैं स्वीकार करता हूँ यही 'तथाता' की पहचान है । मेरी तरफसे कोई शिकायत, मांग नहीं ।

नामदेव के सम्मुख कुत्ते का रूप, एकनाथ के सम्मुख गधे का रूप, ज्ञानदेव के सम्मुख भैंसा के रूप में, राम भक्तों के सम्मुख राम रूप, कृष्ण भक्तों के सम्मुख वह कृष्ण रूप, श्याम रूप में प्रतीत होता है। ज्ञानी को सर्वत्र एक ही दिखाई पड़ता है । ब्राह्मण–चाण्डाल, गौ–गधे, कुत्ते–हाथी में एक आत्मा को ही देखते है ।

पण्डिताः समदर्शिनः – गीता ५।१८

ज्ञानी को यदि कोई अज्ञानी मारने आवे तो वह उससे डरता नहीं मन में प्रसन्न ही होता है कि प्रभो ! आप मुझसे छुप नहीं सकते तुम इस रूप में मेरे पास आये हो । तुम वही हो 'तत्त्वमसि' । यह मृत्यु नहीं मोक्ष ही है ।

ज्ञानी को पीड़ा होती है किन्तु ज्ञानी पीड़ा को देखता रहता है कि पीड़ा है, दर्द है किन्तु उसे दुःख नहीं होता । ज्ञानी को दुःख दुःखी नहीं करता । कांटा चुभता है पता ज्ञानी को भी लगता है किन्तु मुझे चुभा, मुझे दर्द हो रहा है ऐसा ज्ञानी नहीं देखता । ज्ञानी का मन एकाग्र होने से उसे सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदना का भी पता चलता रहता है । सफेद कपड़े पर जरासा दाग भी दिखाई पड़ता है । काले कपड़े पर दाग तो पड़ते हैं किन्तु दाग दिखाई नहीं पड़ते ।

मैं अब ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूँ ऐसी बुद्धि भी जिस ज्ञानी को नहीं होती, वही कृतार्थ हुआ जानो । मैं कृतार्थ हुआ इसमें भी मैं का अहंकार खड़ा है अभी वह द्वैत के बाहर नहीं हुआ है । दूसरों

से वह कहेगा तुम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए हो, मैं ज्ञान को प्राप्त कर चुका हूँ इस कथन में द्वन्द्व, द्वैत मौजूद है । मैं आत्मज्ञानी, तुम अज्ञानी इसमें भी मैं, तू का फर्क मौजूद है ।

जीवन वही गहरा है जिन्होंने विरोधों को भी आत्मसात कर लिया है । जहां जीवन में विरोध छूट जाता है वह जीवन नपुन्सक है, अपंग है, डरपोक है । जहां जीवन में कोई विरोध नहीं रह जाता है जीवन से वह दुर्बल जीवन हो जाता है । जीवन की महत्ता, सौरभ, समृद्धि विरोध में है । राम का जीवन मर्यादित है कृष्ण का जीवन अनुठा है । वहां न मर्यादा है न अहिंसा है । परम स्वतन्त्र है ।

जो कहता है मैं नहीं जानता वही एकदिन जानने में समर्थ हो जाता है । जिसने कहा मैं जानता हूँ उसके ज्ञान के द्वार बन्द हो जाते हैं अब वह किसी से कुछ सीख नहीं ले सकता, उसका ज्ञान का अहंकार ही उसके लिये बाधा बन गया ।

धीर पुरुष दृश्य को सत्य नहीं मानते, वे द्रष्टा आत्मा को ही सत्य जानते हैं, वे द्रष्टा को ही देखते हैं दृश्य को नहीं देखते । जिसने इस अविनाशी, अव्यय आत्मा को जान लिया, उसने पाने योग्य जो था, उसे पालिया, जो सार था उसको ग्रहण कर लिया । असार दृश्य जगत् को छोड़ दिया । ज्ञानी सब करता है और फिर भी कुछ नहीं करता । चलता है और चलता नहीं । बोलता है और बोलता नहीं ।

जैसे वृक्ष से पका फल, सुखा पत्र, अब गिरा कि तब गिरा क्या फर्क है इस तरह का जीवन ज्ञानी का है । जिसको यह बात समझ आगई वह किसी को दुःख क्यों देगा, पीड़ा क्यों देगा । ज्ञानी न तो अधिक जीने की इच्छा करता है न ज्ञानी जीवन को शिघ्र समाप्त करने की इच्छा करता है । वह अपने जीवन को प्रारब्ध पर छोड़ सुख से जीता है ।

देह, विचार एवं भाव शून्यता

देह परीधी है, हम परमात्मा केन्द्र है, वह हमारा स्वरूप है । शरीर, विचार और भाव इन तीनों की शुद्धि हो जाने पर हम परमात्मा के सम्मुख होने के अधिकारी बन जाते हैं । अलौकिक से सम्बन्धित हो जाते हैं । किन्तु शरीर, विचार और भाव की शुद्धि परमात्मा से मिलन नहीं है । एक हो जाना नहीं है । वह परमात्मा को जानना है किन्तु परमात्मा में मिल जाना नहीं है । शुद्धि की भूमिका तो हमारी दृष्टि को परमात्मा की तरफ आकर्षित करती है, परमात्मा की ओर उन्मुख करती है । उसके बाद शून्य की दृष्टि परमात्मा से एकत्व कराती है जैसे नदी चलकर सागर में मिल जाती है ।

अतः शरीर, विचार एवं भाव को प्रथम शुद्ध करना है । इसके बाद शरीर, विचार एवं भाव के प्रति शून्यता लाना है ।

शरीर की शून्यता, शरीर तादात्म्यता का विरोध है । शरीर के साथ हमारा भ्रान्त सम्बन्ध है । हम ऐसा नहीं कहते हैं कि हमारा शरीर बल्कि हम ऐसा मानते हैं कि हम शरीर हैं, मैं शरीर हूँ । यदि मैं शरीर नहीं हूँ यह भाव जग जावे तो शरीर शून्यता घटित हो जाएगी । शरीर के साथ हमारा तादात्म्य टूट जावे तो शरीर शून्यता घटित होगी ।

आत्मनिष्ठ ज्ञानी को कोई मार नहीं सकता । परिक्षित को सर्प डसने आकर बैठ गया । शुकदेव ने कहा कि अब तुझे यह डसने

वाला है तू मरेगा । किन्तु ज्ञानामृत के पान से परिक्षित देह भाव त्याग चुका था । परिक्षित कहता है– जिसे आप परिक्षित कह रहे हैं सर्प उसे डसेगा व आप उसे देखेंगे, उसी प्रकार मैं भी उसे देखूंगा । मुझे वह छू भी नहीं सकता । मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा । **जहाँ तक कोई कुछ हानि पहुंचा सकता है वहां तक हमारा होना नहीं है । जिसे कृष्ण ने कहा नैनं छिन्दन्ती शस्त्राणि ...** वह अमर आत्मा मैं हूँ। उस सत्ता का बोध हुआ और शरीर का तादात्म्य टूट जाना है । यह भाव टूट जाना कि मैं देह हूँ, शरीर की शून्यता है । इस तादात्म्य को तोड़ने के लिये हमें निरन्तर विचार करना होगा । इसके लिये शरीर जितना शुद्धाहारी होगा उसकी बुद्धि सात्विक होने से उतनी ही जल्दी शरीर से एकत्व भाव टूट सकेगा । शिघ्र ही जान सकोगे कि मैं शरीर नहीं हूँ यह दृश्य है एवं मैं इससे पृथक् इसका द्रष्टा हूँ । इस शरीर भाव को तोड़ने के लिये क्या करें कि देह भाव छूट जाए ।

उठते–बैठते, सोते–जागते, खाते–पीते, ध्यान पूर्वक देखें कि भीतर कोई ऐसा भी है जो न उठता है, न बैठता है, न खाता है, न पीता है, न सोता है, न जागता है, न आता है, न जाता है केवल द्रष्टा है केवल सब क्रियाओं का साक्षी है । आप का शरीर, पांव, हाथ प्राण चल रहे हैं किन्तु शरीर के भीतर कोई एक तत्त्व ऐसा भी है जो आराम से देख रहा है वह एक कदम भी नहीं चल रहा है जैसे रथ, मोटर, हवाई जहाज, ट्रेन में बैठा यात्री एक कदम भी नहीं चलता है एवं मंजिल पर पहुंच जाता है । इसी तरह मात्र आपके शरीर की समस्त क्रियाओं को वह देख रहा है ।

जब हाथ पैर में दर्द हो पैर को चोंट लग गई हो तो भीतर सजग होकर देखें कि दर्द मुझे हो रहा है या मेरे मन को । चोंट मुझे लगी है या मेरे पैर को । आप तो इनसे अलग इनको जानने वाले हैं और आप कहते भी है कि मेरे पैर में, हाथ में, कमर में, मेरे सिर में दर्द हो रहा है । मेरे पैर में चोट लग गई है । मेरा हाथ कट गया है ।

मेरे हार्ट का आप्रेशन हुआ है, मैं देख रहा था । मैं केवल उसका साक्षी हूँ । मैं पीड़ा होने का भी दर्शक था, द्रष्टा ही था । मुझे दर्द नहीं था अन्यथा मैं कैसे जान पाता कि दर्द हो रहा है ।

जब भूख लगे, प्यास लगे तब देखे कि भूख आपको लगी है, प्यास आपको लगी है या आप केवल उसके लगने व मिटने के दर्शक है, साक्षी है । और जब कोई खुशी हो, दुःख हो तो उसे भी देखें कि वह खुशी एवं दुःख आपको हुआ है या आपके मन को । आप तो उस दुःख सुख के भी द्रष्टा है । कहते भी है कि आज मेरा मन खुशी के मारे फूल रहा है, आज मेरा मन दुःख के मारे रो रहा है । मैं तो केवल जान रहा हूँ, देख रहा हूँ ।

हम हर क्रिया में निरन्तर इस बात को देखने की चेष्टा करते रहें कि घटनाए कहां घट रही है ? मुझ पर घट रही है या मेरे शरीर, इन्द्रिय, मन पर घट रही है ? मैं तो केवल देख रहा हूँ । हमारी आदत बन गई है दृश्य के साथ देह, इन्द्रिय, अवस्थाओं की घटनाओं व क्रियाओं के साथ एकता करलेने की । खेल नाटक के दृश्यों में भी एकता कर हंसने, रोने, चिल्लाने लग जाते हैं । इसी तरह शरीर मन पर घटने वाली क्रियाओं के साथ भी एकता कर रोने हंसने लग जाते हैं । समस्त दुःखों का एक ही कारण है कि हमने देह संघात से एकता समझ रखी है और समस्त दुःखों से छूटने का भी एक ही उपाय है कि हमारा शरीर से एकता का माना हुआ सम्बन्ध टूट जाए । बस हमें यह स्मरण आ जाए कि हम यह देह नहीं है । तो इसके लिये हमें सम्यक् स्मृति देह की क्रियाओं के प्रति रखना है कि यह मुझ में नहीं है मैं इनसे सर्वथा पृथक् हूँ । देह के प्रति शून्यता आएगी देह की क्रियाओं के निरिक्षण से । यह निरिक्षण करना जरूरी है ।

जब रात्रि को बिस्तर पर जाए तो देखे कि नींद मुझे आरही है या मन को । देह बिस्तर पर गिर रहा है या मैं गिर रहा हूँ। उठें

तब भी विचारे देह उठा या मैं ? मन जागा या मैं जागा ? नींद मैंने नहीं ली है, नींद केवल मन ने ली है । विश्राम मैंने नहीं किया है विश्राम देह एवं इन्द्रियों ने लिया है । और जब भोजन करे तो जाने कि भोजन प्राण ने किया है । जब स्नान करें वस्त्र पहने तो जाने कि यह देह के साथ हो रहा है । जब चोंट कोई करे, गाली दे तो जानना कि चोंट देह पर की गई है, गाली मन को छू रही है मुझे नहीं । इस भांति सतत बोध को जगाते–जगाते किसी क्षण विस्फोट हो जायगा एवं देह के साथ माना हुआ तादात्म्य टूट जायगा । आप अपने भीतर जितने उतरते चले जाते हैं उतनी देह भूलती चली जाती है । जाग्रत से स्वप्न में जाने पर यह देह सम्बन्ध संसार भूल जाते हैं । स्वप्न से सुषुप्ति में जाने पर वहाँ कुछ भी देह व देह सम्बन्ध संसार का होंश नहीं रहता । जब जाग्रत को लौटते हैं तब देह के साथ तादात्म्य जुड़ता है । जब नींद खुलजावे तब अन्दर देखना कि आप देह है या देह का तादात्म्य जग रहा है । इस देह के तादात्म्य को तोड़ने का यह प्रयोग प्रति रात्रि अवश्य करे । तो देह के साथ तादात्म्य तोड़ने में सहयोग मिलेगा ।

आप बिस्तर पर सो जावे पूरा शरीर, इन्द्रिय, मन को आदेश दें कि शान्त हो जाओ, शान्त हो जाओ । वे शान्त हो जावेंगे । आप कहेंगे हमारे कहने से कैसे शान्त हो जावेंगे । अरे भाई ! तुम्हारे कहने से हाथ उठ जाता है, शरीर उठ जाता है । शरीर बैठ जाता है । हाथ गिर जाता है तो इसी तरह संकल्प द्वारा सबको शान्त किया जा सकता है । प्रत्येक चक्रों को सुझाव देकर शरीर को शिथिल छोड़ दें । कमरे में अंधकार करदें व ध्यान में प्रवेश करें । जब शरीर शिथिल हो जाए, श्वाँस शिथिल हो जाए जब चित्त शान्त हो जाए तब एक भावना करें कि आप मर गए और स्मरण करें कि मैं मर गया हूँ तो कौन–कौन व्यक्ति मेरे लिए कितने दुःखी, चिन्तित एवं हर्षित होंगे । उस मृतावस्था पर जो–जो पास आजाएंगे उनका भी ध्यान करलें । वे जो करेंगे उन्हें भी देखें । फिर सब लोग आस–पास के भी आगये हैं एवं आपको लेजाकर चिता पर रख

दिया । लपटे उठी व आपकी लाश को राख बना दिया । तब आप अकेले रह जाएंगे देह की मृत्यु के साक्षी । तब बोध घटेगा कि आप देह नहीं है । उस समय देह के साथ का तादात्म्य टूट जाएगा । फिर आप इस ध्यान के बाद उठेंगे तो थोड़ी देर तक आप को यह होश रहेगा कि आप देह नहीं हैं । इस अवस्था को विदेह कहते हैं । इस प्रकार देह में रहते हुए देह की क्रियाओं के होते हुए आप देह भाव से मुक्त होगये । देह शून्यता घट जावेगी । देह का तादात्म्य टूट जाना सबसे बड़ा तप है । आपकी सारी भूले व पाप देह से बन्धे हुए हैं । आपने जीवन में एक भी पाप, भूल बिना देह तादात्म्य के नहीं की है । तब आप गीले नारियल से सुखे नारियल हो जाते हैं । तब देखेंगे कि सभी चोंट, दर्द, पीड़ा, दुःख देह के साथ घट रही है मन के साथ घट रही है, आपको कोई भी स्पर्श नहीं कर पा रहे हैं । यह केन्द्रिय साधना का पहला चरण है कि देह की शून्यता को साधें । जो प्रयास करते हैं वे निश्चित सफल हो जाते हैं ।

दूसरा चरण आन्तरिक साधना का विचार शून्यता है । जिस प्रकार सम्यक निरिक्षण से देह शून्यता घटित होती है । उसी प्रकार सम्यक् मन निरिक्षण से विचार शून्यता घटित होती है ।

विचार की धाराएं जो हमारे मस्तिष्क में दौड़ती है मात्र उनके निरिक्षक हो जाएं । जैसे कोई नदी के किनारे बैठा हो एवं नदी की धारा को देखे, सिर्फ देखे । आकाश के पक्षियों को सिर्फ बिना चुनाव के देखे । या बादलों की दौड़ती पंक्तियों को देखे । वैसे ही अपने मन के आकाश में विचार के दौड़ते हुए पक्षियों को, बादलों को, विचार की नदी को चुपचाप देखते रहना है । विचारों से बन्धे नहीं विचारों को बान्धे नहीं । विचारों को खुले छोड़ दें । चुप बैठे, देखते रहें अच्छे बुरे विचारों के प्रति कोई छेड़–छाड़ न करें । बुरे विचार आएं तो रोके नहीं, अच्छे विचार आऐं तो उन्हें भी आने दें । न आता हो तो लाने की चेष्टा न करें । आप निरिक्षक रहें। उस निरिक्षण से मालूम होगा कि विचार आते जाते अलग है एवं आप अलग है ।

क्योंकि बोध होता है कि जो विचारों को देख रहा है, मन की चंचलता को देख रहा है, मन के सुख–दुःख अवस्था को देख रहा है, वह विचारों से, मन के सुख–दुःख से, मन की चंचलता, समाधि से पृथक् होगा । और जब यह बोध होता है तो विचार शून्यता घट जाती है । तब आपकी कोई चिन्ता, कोई विचार नहीं हो सकते । आप विचारों के भीड़ में रहेंगे किन्तु विचारों से भिन्न रहेंगे । आप चिन्ताओं के बीच में हो सकते हैं किन्तु चिन्ता आपकी नहीं हो सकती । और यह ध्यान में आजाए कि मैं विचार नहीं हूँ तो विचारों के प्राण टूटने लग जाते हैं । विचार निर्जीव होने लगते हैं । विचारों का जीवन इसमें है कि हम यह समझें कि विचार मेरे हैं । कोई विचार आपके नहीं है सब विचार आपसे अन्य दृश्य मात्र है । उनका निरिक्षण ही उनकी मौत है । विचारों को सजग होकर देखने से विचार बन्द हो जाते हैं । तब यह पता चलता है कि कर्ता अलग है एवं द्रष्टा अलग है । विचारों के द्रष्टा रहना है । हम विचारक नहीं है, विचार के द्रष्टा है इसलिए हम अपने ऋषियों को मन्त्रों के द्रष्टा कहते हैं स्रष्टा नहीं कहते हैं । हम विचारों के भावाभाव को देखें । आपके अन्दर दो धाराएं होनी चाहिए । एक विचार की व दूसरी दर्शन की, देखने की । साधारण व्यक्ति में द्रष्टा का भाव नहीं रहता वहां विचार की ही धारा रहती है । दर्शन सोया हुआ होता है । साधक के भीतर दो धाराएं होती है । विचार की और दर्शन की एक साथ साधना अर्थात् ध्यान करना होगा । इसको सम्यक् निरिक्षण कहते हैं, स्मरण पूर्वक विचार को देखने से विचार शून्य हो जाएगा । शरीर की क्रियाओं को देखेंगे शरीर शून्य हो जाएगा । और भावों का निरिक्षण करेंगे तो भाव शून्यता घट जाएगी ।

कठोरता की जगह करुणा, घृणा की जगह प्रेम को आने दे और द्वेष की जगह मैत्री को आने दे भाव शुद्धि करने हेतु ।

अब इस सत्य को भी जाने की जो प्रेम कर रहा है, जो घृणा कर रहा है उसके पीछे भी एक तत्त्व है जो 'सर्वधी साक्षी भूतम्' जो

प्रेम व घृणा को भी देख रहा है, वह केवल जान रहा है, वह न घृणा करता है और न प्रेम करता है वह केवल साक्षी है वही तुम हो । तत्त्वमसि । उसने देखा था कि कभी इसने घृणा की थी कभी इसने प्रेम किया था किन्तु वह जो सबके मध्य में सबके पीछे है वह केवल साक्षी है वह केवल देख रहा है । वही आप हैं ।

जब मन किसी को घृणा करता है तो क्या मन के भीतर किसी को यह पता चलता रहता है यह कि घृणा कर रहा है । और जब किसी से प्रेम किया जाता है तो उसे यह ज्ञान होता रहता है कि मन इसके साथ प्रेम में उतर रहा है । जिसको पता चलता है कि मन राग–द्वेष, प्रेम–घृणा, सुख–दुःख कर रहा है वह इन सबसे पीछे है । वही हम हैं, वही आत्मा है । शरीर, विचार और भाव के पीछे जो है वही आत्मा है, वह हम है । परमात्मा को इसीलिए नेति–नेति कहते हैं क्योंकि न वह विचार है, न वह भाव है, न वह देह है । बल्कि वह इन सबका साक्षी है, प्रकाशक है । जहाँ कुछ भी शेष नहीं रह जाता है । इन्कार करते–करते जो शेष रह जाता है, वही द्रष्टा है, वही साक्षी है वही आत्मा है, वही हम तुम हैं ।

तो भाव की धारा के प्रति भी द्रष्टा का बोध रखना है इससे भाव की शून्यता घट जाएगी ।

देह की शून्यता, विचार की शून्यता, भाव की शून्यता के जो पार हो जाता है उसे साक्षी मिल जाता है, उसे लक्ष्य मिलगया और जो इन तीन में से किसी एक में बन्धा रह जाता है वह लक्ष्य पर नहीं पहुंच सकता । जैसे बंधी नौका, बन्धा पशु, बन्धा पक्षी, बन्धा मनुष्य ।

नाव को खोल देंगे तो हवा व लहर भी उसे आगे बढ़ा देगी किन्तु बंधी नाव वही किनारे से टकरा कर टूट जावेगी ।

आपके मन की भी यही दशा है । विचार से बन्धा है, शरीर से बन्धा है, भाव से बन्धा है । एक नहीं अनन्त जन्म चलाते रहे, बंधी

नाव वहीं टकराकर चूर–चूर होगी, मन्जिल पर नहीं पहुंच सकेगी । हम वहीं बन्धे हैं जहां से शुरु किया था । ऐसा होंश भी किसी सदगुरु की कृपा से ही आ सकेगा । नाव को खोलना सीखना जरूरी है अन्यथा बन्धी नाव के साथ कितनी ही मेहनत क्यों न करें वह परिश्रम मात्र होगा ।

बन्धन नाम, जाति, आश्रम का स्वीकार करलेना बहुत आसान है किन्तु इनको छोड़ना बहुत कठिन है । तुम नाव तो खोलो परमात्मा की हवाए तुम्हें लक्ष्य पर पहुंचा देगी । परमात्मा की हवा सद्गुरु है । वे परमात्मा की वाणी महावाक्य सुना कर स्वरूप में स्थित कर देंगे फिर तुम्हें साधनों की नाव चलाना भी नहीं पड़ेगी ।

देह शुद्धि, विचार शुद्धि एवं भाव शुद्धि होने से देह शून्यता विचार शून्यता तथा भाव शून्यता घट जाती है । इन तीनों शुद्धि एवं शून्यता होने का परिणाम समाधि है ।

जो गहराई में उतरेगा वह मोती लेकर उठेगा । जो खदानो को खोदेगा वह हीरे, नीलम, पन्ना, पुखराज लाल को पायेगा । जो अपने भीतर खोजेगा वह परमात्मा को पाएगा ।

जिसमें चैतन्यता है, विवेक है वह सत्य को बिना जाने यदि प्राण छोड़ देता है तो यह उसका व्यक्तिगत अपमान है कि वह स्वयं को जाने बिना समाप्त हो जाए । अतः प्रत्येक के भीतर यह संकल्प भर जाना चाहिये कि मैं सत्य को जानकर रहूंगा, स्वयं को जानकर रहूंगा । सहज समाधि को प्राप्त कर रहूँगा । **खोज में नहीं वह खोजी में है ।**

पात्रता, अधिकार के विचार को छोड़ो । परमात्मा कोई संसारी वस्तु नहीं कि तुम कीमत चुकाओ और उसे ले आओ । परमात्मा कोई डब्बे में रखने वाली वस्तु नहीं जो कीमत चुकाओ और ले आओ ।

कभी न भूले

रात सोने से पूर्व प्रत्येक से क्षमा मांगले । क्या पता कल की सुबह शरीर रहे या न रहे । प्रभु का सुमिरन करते करते सोंए । जिनसे वैर विरोध है उन से क्षमा मांग लेना । अपने सोऽहम् मंत्र का जाप कर सोएँ ।

यदि हमें आज मालुम पड़ जाए कि आज ही मेरे इस शरीर का, जीवन का अन्तिम दिन है तो फिर क्या तुम चोरी करने की सोचोगे । किसी प्रकार का पाप कर्म करने की सोचोगे ? कदापि नहीं । उस दिन तो धर्म करने की इच्छा होगी । मृत्यु को देख धर्म बढ़ता है । प्रार्थना कर सोएँ ।

इसलिये प्रार्थना कर सोएँ कि हे प्रभु ! यदि तूने कल का सूरज दिखाया तो मैं तुम्हे नमन करने आऊंगा । और यदि कल का सूरज दिखाने योग्य नहीं समझा और मृत्यु घट गई तो फिर मेरा यह अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो । इस तरह रोज रोज मृत्यु को जीतने की तैयारी होती रहेगी तो एक दिन मृत्यु महा मृत्यु, महोत्सव बन जायगा । मृत्यु के भय पर विजय होगी ।

यदि कल सुबह का सूरज देखने को मिलता है तो परमात्मा को नमन कर धन्यवाद देना कि हे प्रभु ! तुने मुझे आज एक और सुबह के दर्शन करादिया इसलिए मैं संकल्प करता हूँ कि आज के दिन मैं पूर्ण ईमानदारी से अच्छे कार्य करूँगा । किसी को मन, वचन, कर्म

से दुःखी नहीं करूंगा । जन कल्याणार्थ कर्म करूँगा । दीन दुखियों की सेवा करूँगा ।

मृत्यु, परमात्मा के घर पर जाकर जीवन भर का हिसाब देने का दिन है । हिसाब ठीक हो तो इनकम टेक्स विभागवाले का डर नहीं । हिसाब ठीक नहीं तो डर रहता है । जिसने मृत्यु आने के पहले अमृत को जान लिया उसे मृत्यु का भय नहीं रहता । दुकान पर ग्राहक कभी भी आ सकता है । कोई भरोसा नहीं इसी तरह सब समय तैयार रहो, मौत के भी आने का कोई भरोसा नहीं । दूसरों की अर्थी निकलते देख अपनी मृत्यु का बोध जगालें कि एक दिन मेरी भी अर्थी निकलने वाली है । उसे मरा देख रोएं नहीं ।

मृत्यु बोध से ही जीवन संवरता है, पापों से बचा जाता है । मृत्यु का विस्मरण करने वालों से ही अधिक पाप कर्म होते जाते हैं । जिस जमीन, मकान, नोट (रुपयों) पर आज तुम्हारा अधिकार है तुमसे पहले इसी जमीन, मकान, रुपये पर हजारों ने अधिकार दिखाया था, हजारों ने उसे अपने जेब, लाकर, तिजोरी, अटैची में रखा था किन्तु जमीन, मकान, रुपये किसी के नहीं होते, सब यहीं मरते छोड़ चले जाते हैं । सामान सब यहीं छूट जाता है । आँखें मूंदते ही सब लूट जाता है ।

मकान धर्मशाला है और तुम एक यात्री हो, अपना ठहर कर काम करलो एवं आगे बढ़ो ।

दुकानदार धन कमाने के लिये पांचों इन्द्रियों के विषय का त्याग कर देता है तब उसे न नींद आती है न भूख–प्यास लगती है न नाच, गान अच्छा लगता है । ग्राहक को नहीं छोड़ता है । इसी तरह तुम भी स्वधर्म कमाने हेतु पांचों इन्द्रियों के विषय को छोड़ कर प्राप्त करलो ।

शरीर मकान है, मालिक जीव है । शरीर मकान से मूल्यवान जीव मालिक है । मालिक के अभाव में शरीर मुर्दा पड़ा रहता है । उसकी कोई ईज्ज़त, सम्मान नहीं करता । जड़ से ममता हटा

सच्चिदानन्द चेतन आत्मा में सोऽहम् भाव जगावें । जो चैतन्य है इस मृत शरीर में वही हमारा अपना स्वरूप है ।

मृत्यु से बचने हेतु चार बातें सदा याद रखें :

१. मैं मरण धर्मी शरीर वाला हूँ । मरना निश्चित है फिर मोह क्यों करें ।

२. मैं वियोग धर्मी शरीर वाला हूँ । धन परिवार जिसमे भी संयोग हो रहा सब छूटने वाले हैं फिर मोह क्यों ।

३. मैं रोग धर्मी शरीर वाला हूँ । भयंकर रोग प्रकट हो सकता है । हास्पिटल में देखो सिर, कान, पेट, टांग टूंट पड़ें हैं ।

४. मैं जरा धर्मी शरीर वाला हूँ । यह रूप सदा नहीं रहेगा ।

यह चार चिन्तन जीवन की आसक्ति की डोर को तोड़ते हैं ।

वासना की रस्सी को तोड़ दें तो फिर मन हमारा स्वामी नहीं बनेगा, हम मन के स्वामी रहेंगे ।

आंख का अन्धा सुखी हो सकता है किन्तु विचार का अंधा कभी भी सुखी नहीं हो सकता । विवेक विचार के अन्धे को साक्षात् ब्रह्मा भी सुखी नहीं कर सकेंगे ।

मनुष्य बिना ज्ञान के अंधा है एवं बिना क्रिया के ज्ञान पंगु है । वस्तु को सही रूप में देखना सम्यक् दर्शन कहलाता है । तत्त्व ज्ञान पर श्रद्धा रखना आत्मा का निरिक्षण करना अनात्म बुद्धि को दूर करना सम्यक् चरित्र कहलाता है। यह सबसे महत्वपूर्ण साधना है ।

मन अशान्त, चिन्तित, क्रोधित दिखाई पड़ता है सीधे बैठ आंखे बंद करले तनाव रहित शरीर की स्थिति रखे मन तत्काल शान्त पाओगे । १० मिनिट ऐसा करे केवल श्वांस के भीतर बाहर होने को जानते रहे । फिर १० मिनिट स्वीकार में बैठे जो होता है आवाज,

चिल्लाना, रोना, लाभ–हानि आदि । फिर १० मिनिट मैं हूँ यह भाव भी मिट जाय इस प्रकार बैठे तो फिर साक्षी प्रकट हो जाएगा ।

एकदिन जब मौत आयेगी तो तुम से सब छीन ही लेगी, तब दान देने का मजा क्यों नहीं लेते हो ?

जो धन को परमार्थ में लगा सकता है वह उसका मालिक सिद्ध होता है जो धन खर्च न कर सके उस धन का चौकीदार बस है । जैसे बैंक खजाने के बाहर पहरेदार बन्दुक लिये खड़ा रहता है । मालिक तो वह है जो देना जानता है। जो देने में समर्थ है । दिया हुआ ही बचता है । जिसने बचाया उसीने खोया एवं जिसने यहां दिया उसीने आगे पाया, वही बचा रहा ।

जिसके जीवन में धन की वासना न रही, वह क्या गरीब हो सकता है ।

हर संत का अतीत है और हर पापी का भविष्य है । संत का अतीत पाप पूर्ण था व पापी का भविष्य है वह संत हो सकता है । तुम जिसका भी सम्मान करते हो वह तुम होना चाहते हो इसीलिये महात्मा का सम्मान करते हो । जिसकी तुम निन्दा करते हो उसका यही अर्थ है कि तुम उस प्रकार होना नहीं चाहते ।

यदि संसार १०० % दिखाई पड़ता है तो आत्मा शून्य हो गया । यदि संसार ५० % तो आत्मा ५०% हो गया । यदि आत्मा ९० % है तो संसार १० % रह गया काम चलाने हेतु । क्योंकि अब संसार स्वप्न हो गया आत्मा सत्य प्रतीत होने लगी । जिस दिन ९९% आत्मा व १% संसार रह गया उस दिन तुम आत्मवान हो गये फिर १०० % आत्मा व संसार शून्य हो गया ।

बाहर से जो मिलता है वह दुःख ही होगा भले ही सुख रूप स्वीकार करें, लेकिन जो भीतर से मिलता है वह आनन्द है, वह साक्षी है वह आत्मा है । आनन्द मिलता है उन्हें जो भीतर लौटते हैं, साक्षी

में आते हैं, द्रष्टा में ठहर ते हैं आनन्द का कोई सम्बन्ध ही नहीं है बाहरी जगत से ।

वैर नरक है, कहीं और नरक नहीं । शत्रुता में जीना नरक है । जितनी शत्रुता तुम अपने चारों तरफ बढ़ाते हो उतना ही तुम्हारा नरक बड़ा हो जाता है । तुम जितनी ज्यादा मित्रता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना स्वर्गीय आनन्द तुम्हारे जीवन में चारों ओर से बरसने लगता है । मित्रों के बीच जीने का नाम स्वर्ग है और शत्रुता भाव रखकर जीने का नाम नरक है । और यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम किस वातावरण में जीना चाहते हो । नरक व स्वर्ग कोई भौगोलिक जगह नहीं है ।

जब तुम समस्त संसार को मित्र की भांति देखते हो, तुम्हारे लिये जगत मित्र हो गया वे भले तुम्हें मित्र की तरह माने या न माने यह उनकी मनोदशा उन्हें दुःख अथवा सुख रूप होगी, किन्तु तुम्हें कोई पीड़ा नहीं दे सकता । वैर से वैर कभी शान्त नहीं हो सकता । निर्वैर से वैर शान्त होता है । यही मन की निर्वैर अवस्था ज्ञानी की रहती है । जिसके मन में वैर है उनकी अशान्ति वे जाने ।

दान करुणा भाव से होना चाहिये, अपने दानी कहलाने, अपनी प्रशंसा के लिये नहीं होना चाहिये । अहंकार के लिये, यश के लिये दान किया तो पाप हो गया । बन्ध का कारण बन गया । सकामता से किया, फलेच्छा से किया तो बन्धन रूप हो गया ।

वर्तमान में जो नहीं जी रहा है वह कभी आनन्दित जीवन व्यतीत नहीं कर सकेगा । जो वर्तमान में भी भूत एवं भविष्य का चिन्तन कर रहा है वह वर्तमान को दुःख रूप बना रहा है ।

बुद्ध कहते हैं तुम केवल अपनी चिन्ता करो । तुम्हारे ऊपर तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्यका दायित्व नहीं है । अगर तुम उत्तरदायी हो तो अपने लिए । तुम्हें यहां से लौटने पर परमात्मा पूछेगा तो केवल

तुम्हारे लिये कि तुम्हें जो जीवन का अवसर दिया था, उस अवसर में तुमने क्या किया, क्या कमाया, क्या गंवाया ? तुमने जीवन को खाली नष्ट किया पशुओं की तरह या उसमें अमृत भरा । दूसरों केलिये मत सोचो कि उन्होंने क्या उचित, क्या अनुचित किया । तुम केवल अपने कृत्य–अकृत्य का अवलोकन करो ।

कठोर वचन मत बोलो, बोलने पर दूसरे भी तुम्हें वैसा ही कटु वचन बोलेंगे । कटु वचन दुःखदायी है, उसके बदले में तुम्हें भी दुःख मिलेगा ।

हम देना ही भूल गये । जब कि पुण्य बांटने से बढ़ता है । दबाने से घटता है । यदि चित्त पुण्य के तरफ न लगाओ, तो पाप की तरफ चित्त लगेगा । चित्त को कोई तो सहारा चाहिये बिना डाल के बन्दर नहीं रहता इसी तरह चित्त की दशा है । कहीं तो लगेगा ।

यदि मृत्यु नहीं होती तो जीवन कुरूप हो जाता । मृत्यु नया उत्साह, नया शरीर, नये विचार उत्पन्न करती है । मृत्यु तो निश्चित है । उससे भय न करो । जीवन में जिस हेतु से आये हो जो करना है उस आत्म कल्याण को अविलम्ब कर डालो । शरीर तो गन्दे पदार्थों व बीमारियों का घर है ।

जिसने जीवन में ध्यान और समाधि की साधना की है उसके लिये मृत्यु सहज वस्त्र परिवर्तन से ज्यादा कुछ नहीं है ।

पाप से बचने हेतु मृत्यु का सर्वदा स्मरण रखो । इसलिये संसार के प्रति आसक्ति, मोह को दूर करने के लिये श्मशान से बढ़कर कोई अन्य स्थान नहीं है । सभी मृत्यु क्यु में खड़े हैं ।

हर घर को मरघट जानो क्योंकि घर के प्रत्येक व्यक्ति के प्राण घर में रहते ही श्वांस–श्वांस में घट रहे हैं एवं कई मर भी गये हैं । इसीलिये घर का नाम रखो तो मरघट से सुन्दर उपयुक्त कोई अन्य नाम नहीं या दूसरा नाम है भूत बंगला, पंच भूतों का बना यह शरीर बंगला है ।

तुम्हारे बाप दादा सब इसी में मरे हैं और तुम भी इसी में मरोगे । ऐसा कोई घर नहीं जहां से एक मुठ्ठी चावल ला सको, जहां कोई न मरा हो ।

मृत्यु इस भव का अन्त एवं दूसरे भव का प्रारम्भ है अथवा इस शरीर में सोकर दूसरे शरीर में जाग जाना ही मृत्यु है । रोज रात्रि ही अल्प मृत्यु है । शरीर मृत होना दीर्घ मृत्यु है । आत्म ज्ञान हो जाने वाले की महा मृत्यु हो जाती है क्योंकि उसे फिर और नहीं मरना पड़ेगा ।

धर्मराज पुराने कपड़े लेकर नये कपड़े पहनाता है यह तो प्रसन्न होने की बात है दुःख तो अज्ञानी मनाते हैं । मृत्यु शाश्वत है पंछी पिंजरा छोड़ जाने जैसा ही शरीर पिंजरे को छोड़ जीव चला जाता है ।

जिस व्यक्ति के जीवन से मृत्यु का भय चला जाए उसके सभी भय चले जाते है क्योंकि सभी भय का मूल मृत्यु है ।

यदि पा लिया तो एक दिन खो जायगा, मिल गया तो फिर एक दिन बिछुड़ जायगा । जन्म लिया तो एक दिन मर जायगा । चढ़ गये तो उतरना होगा । उसको पाओ जो पाया नहीं जाता, जो सदा है ।

याद रखो । तुम दूसरे को गुलाम बनाना चाहते हो तो उसके पहले तुम्हें उसकी दासता को स्वीकार करना पड़ेगा । कुत्ते, नौकर, गाय, तोते को बांध रखने वाला स्वयं भी उनके द्वारा बंध जाता है ।

प्रतिदिन क्या चिन्तन करें

१. मैं जरा धर्मी हूँ । २. मैं वियोग धर्मी हूँ । ३. मैं रोग धर्मी हूँ । ४. मैं मरण धर्मी हूँ ।

१. मैं जराधर्मी हूँ अर्थात् मेरा शरीर षड् विकारी होने से बचपन, किशोर, जवानी के बाद बुढ़ापा अवश्य आने वाला है । यह राजा, प्रजा, साधु, रोगी, भोगी सिद्ध किसी को नहीं छोड़ता है । महान शक्तिशाली सत्ताधारी भी अपार धन खर्च करके इस जरा व्याधि से बच नहीं सकते । वृद्धावस्था का चिन्तन शरीर के सौन्दर्य, शक्ति के अहंकार से बचाता है । आकर न जाये वह बुढ़ापा, जाकर न आवे वह जवानी ।

२. मैं वियोग धर्मी हूँ – अर्थात् जिसका संयोग हुआ है, जो साधन द्वारा प्राप्त हुआ है वह निश्चित ही एक दिन बदल जावेगा, छूट जावेगा, मिट जावेगा । शरीर प्रतिश्वांस अपना पूर्व रूप छोड़ नूतन रूप धारण कर रहा है । धन सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा, रूप बल, सौन्दर्य किसका सदा एक जैसा रहा है ? पत्नी, पति, पुत्र, सम्बन्धीजन भी अमर नहीं तुम उन्हें नहीं छोड़ोगे तो भी वे तुम्हें छोड़ जाऐंगे । देखो दांत, आंख, कान, जवानी, सिर के बाल, रूप आदि कहां सदा साथ देते हैं ।

३. मैं रोग धर्मी हूँ – देह के प्रति आसक्ति को घटाने हेतु यह चिन्तन करो कि मेरा शरीर रोगों का घर है, प्रत्येक दिखाई

पड़ने वाला शरीर भी रोगों का भण्डार है, केवल परिस्थिति की प्रतिक्षा में है। मिलते ही उभर जाऐगा । जैसे गर्मी में सर्वत्र सूखा दिखाई पड़ने वाली भूमी अनन्त बीजों का भण्डार है, वर्षा होते ही प्रकट हो जाते हैं। अस्पताल में जाकर रोगियों की विभिन्न स्थिति को देख अनुमान लगा सकते हैं कैसे कैसे रोगो से वे ग्रसित दुःख भोग रहे हैं। ऐसा चिन्तन किसी के रूप की व अपने रूप बल की आसक्ति को दूर करता है । अस्पताल में किसी के मूत्र को, मल को पेट में छिद्र करके नली द्वारा निकाला जा रहा है । किसी के मुँह में पाइप लगा भोजन, पानी, पवन दिया जा रहा है, किसी को रक्त व किसी को सलाइन चढा रखी है ।

४. मैं मरण धर्मी हूँ – अर्थात एक दिन यह शरीर मृत्यु को प्राप्त हो जाने वाला है । जन्म से ही मरता आ रहा है। दिन–दिन मृत्यु समीप होती जा रही है । शरीर दृष्टि से हम सब मृत्यु की लाइन में खड़े है, आगे वाला हटता है हम उस तरफ सरक रहे हैं रेल्वे, बस टिकट, कन्ट्रोल लाइन की तरह ।

यह संसार, हमारा घर मुर्दाघर, मरघट, भूत बंगला है । सब यहां आकर मर जाते हैं । हमारे घर में हमारे दादा, परदादा मर चले गये एकदिन यह शरीर हमारा भी छूट जाएगा ।

मौत की स्मृति पाप से, भोगासक्ति से, अहंकार से बचाती है धर्म में जोड़ती है । मौत का चिन्तन लोभ से संग्रह वृत्ति से दूर करता है ।

मौत सच्चा मित्र है जो पुराना लेकर सब नया देता है । जन्म दिवस इसबात का संकेत है कि इतने अमूल्य वर्ष जीवन के बीत गये कितना बचा कोई नहीं जानता अतः मृत्यु पर भरोसा भविष्य का न कर आज ही अपने मोक्ष, कल्याण करले ।

सम्भव हो तो आज ही लिया कर्जा उसे जाकर चुकादो । किसी से वैर–विरोध हो गया है तो क्षमा मांग लो । जिनसे बेरूखी से पेश आते थे उनसे स्नेह पूर्ण सम्बन्ध व्यवहार करलो । रात्रि निद्रा लेने से पहले ही राग–द्वेष को सच्चे मन से धो डालो ।

दिन में मरघट की परिक्रमा अवश्य करना । वहां जाकर कुछ देर बैठना, देह की नश्वरता का बोध जगेगा । एक क्रान्ति पैदा होगी जीवन में जीवन की असारता का बोध जाग्रत होगा । जीवन में जो धन सम्पत्ति परिवार का घमण्ड था मृत्यु पर एक मुठ्ठी भर राख एवं हड्डी के कुछ टुकड़े से ज्यादा नहीं दिखेगा । वैराग्य के लिये मरघट से उत्तम स्थान एवं शौचालय से अधिक मन की पवित्रता का स्थान दुनिया में नहीं है। तुम्हारे प्राण तो इसी कोठी, मकान में निकलेंगे । इन कोठियों, बंगलों, मकानों में सभी तो मरने की लाइन में खड़े है। प्लेटफार्म पर ट्रेन में चढ़ जाने के लिये जैसे यात्री खड़े हैं घर में उसी प्रकार मृत्यु के समय लेने आने वाले यमदूतों के साथ बंधने के लिये मानव खड़े है या कसाई के घर गाय, बकरी, मूर्गा, सुअर आदि मृत्यु की लाइन में खड़े हैं। इसी तरह हमारा आपका शरीर मृत्यु की घड़ी देख रहा है । ऐसा कोई घर, नगर, लोक नहीं मिलेगा जहां मृत्यु न पहुंची हो ।

हे परमात्मा ! यदि तूने कल का सूरज दिखाया तो फिर तुझे मैं नमन, प्रणाम, धन्यवाद करूंगा और यदि कल का सूरज न देख संकु, तो प्रभु ! मेरा यह आज अन्तिम प्रणाम स्वीकार करे ।

यदि सुबह उठ सूरज देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो परमात्मा को पुनः धन्यवाद देना कि प्रभो ! तूने दया कर मुझे एक दिन और दिया है तो मैं आज मन, वचन, कर्म से औरों के प्रति अच्छा कर्म करूंगा । जन कल्याण, दीन दुखियों की सेवा, परोपकार, धर्म साधना अवश्य करूँगा । मृत्यु का स्मरण व्यक्ति को धर्म में जोड़ता है ।

जनक के राजमहल में शुकदेव को भोग की ओर दृष्टि नहीं गई क्योंकि नंगी तलवार सूत से बंधी ऊपर लटक रही थी इसलिये न भोग सका और न सो सका ।

भरत विप्रदेव से कहता है कि मुझे रानी, भोग, महल में तुम पूछ रहे हो कि तुम्हें ज्ञान हुआ तो यह सब विलासिता कैसे अच्छी लगती है । तब भरत ने कहा इसका उत्तर बाद में दूंगा पहले एक काम कर यह तेलका भरा कटोरा इसे हाथ में रख और मेरी अनेक रानियों में सबसे सुन्दर कौनसी है उसे साथ ले आना किन्तु तेल की बूंद भी न गिरने पाये। तेरे पीछे नंगी तलवार लेकर सैनिक चलेंगे तेल की एक बूंद गिरी तो धर धड़ से अलग कर देंगे । विप्रदेव महल में घूम आया राजा ने पूछा बताओ कौनसी रानी सुन्दर है, वह कहां है ? उसने कहा कौन रानी, कैसी सुन्दर मुझे तो हर पल मौत दिखाई पड़ रही थी कि तेल की बूंद न गिर जावे । तब राजा भरत ने कहा – बस बिप्रदेव मैं भी राज महल, रानियों के बीच हर पल मौत को देखता रहता हूँ ।

धर्म कल्प वृक्ष हैं, मन वांछित फल देने वाला है । धन से धार्मिक पुस्तके खरीद सकते हैं किन्तु धर्म नहीं । धन से भोजन खरीद सकते हैं किन्तु भूख नहीं । धन से पुस्तके खरीद सकते हैं किन्तु विद्या नहीं । धन से नौकर–नौकारानी रख सकते हैं किन्तु प्रेम नहीं, धन से सौन्दर्य सामग्री, अलंकार, कपड़े खरीद सकते हैं किन्तु रूप नहीं । धन से औषध खरीद सकते हैं किन्तु स्वास्थ्य नहीं । धन से मूर्ति खरीद सकते है किन्तु भगवान नहीं । धन से वीणा खरीद सकते है किन्तु राग नहीं ।

सब कुछ सीखा किन्तु अपने आत्म भाव मैं रहना नहीं आया तो कुछ भी नहीं सीखा। सम्प्रदाय में रहना संत के लक्षण नहीं जो अपने आत्म भाव में रहता है वह संत है । आश्रम या कुटिया में रहना संत के लक्षण नहीं जो अपने में ठहरा है वही सच्चा संत है ।

किसी से न सुख की आशा रखो न किसी से दुःख का भय करो । सुख या दुःख अपने कर्मों से आते हैं, निमित्त कोई भी बनकर आजावे । निमित्त को कर्ता मानना भूल है जैसे पोस्टमेन खुशी की खबर या दुःख की खबर देने में निमित्त है । तुम्हारा ही बोया तुम काटते हो । तुम्हारा दिया हुआ ही तुम्हें मिलता है । बैंक में तुम्हारा जितना रूपया जमा है उसे देने वाले क्लर्क के साथ शत्रुता हो तो भी देने से इन्कार नहीं कर सकता तथा उससे मित्रता हो तो भी जमा राशि से ज्यादा नहीं दे सकता ।

हजारो पुस्तके लिखना, पढ़ना या प्रवचन करना ज्ञानी की पहचान नहीं । अपने को आत्मा जानने वाला देहाभिमान से रहित व्यक्ति ज्ञानी होता है । मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वार, गिरजाघर, पूजा, पाठ करने में धर्म नहीं है । धर्म अपने को आत्मा जानने, पहचानने एवं अनुभव करने में है । धर्म को मात्र बाहर न खोजो स्वयं को खोजो धर्म मिल जाएगा आत्मा ही धर्म है ।

सुखी जीवन हेतु, दिखावे से बचें, दृश्य बनने से बचें, द्रष्टा मात्र रहें यथा प्राप्त में सन्तुष्ट रहें औरों को देख उनके पीछे न भागे । असन्तोष साक्षात नर्क है एवं सन्तोष ही स्वर्ग एवं दुःखों से, चिन्ताओं से मुक्ति दिलाता है ।

अहम् का परित्याग करें । सहज जीना सीखें । जगत में साक्षी मात्र बनकर रहें द्रष्टा बन कर जीएं ।

'मैं' को भोजन 'मेरापन' है । जब तक 'मेरा' नहीं छूटेगा, तब तक 'मैं' नहीं छूट सकता । अहंकार का भोजन मेरापन है क्योंकि 'मेरा' ही 'मैं' को अहंकार देता है ।

आई वाण्ट पीस ख थरपीं झशरलश प्रत्येक व्यक्ति कहते हैं यदि आई और वाण्ट निकाल दे तो शान्ति ही बचेगी अहंकार और इच्छा (तृष्णा) दोनों हो तो शान्ति (पीस) कहाँ ?

जीव जैसा है वैसा तो वह किसी को दिखाता नहीं किन्तु जैसा नहीं है वैसा अपने को दिखाने की चेष्टा करता रहता है ।

ध्यान रहे हर व्यक्ति दो चेहरे रखता है एक घर का, एक बाहर का । पत्नी, बच्चे की तरफ एक चेहरा मित्र, नौकर, ग्राहक, सम्बन्धी की तरफ दूसरा चेहरा ।

तो सुखी जीवन पाने का राज है जो अपने पास है उसीसे अपना जीवन चलाए, जो नहीं है उसकी चिन्ता में अपने प्राप्त सुख सुविधा को दुःख में न बदले । उसके पीछे भाग जो वर्तमान के सुख को नष्ट न करे । ९९ के चक्कर में न पड़े । जो मिला खालिया कल की चिन्ता, फिक्र न करो अन्यथा जो है उस सुख से भी वंचित रह जाओगे ।

दुःख का पहला कारण आकांक्षा, इच्छा, तृष्णा है । दुःख कहीं बाहर से एवं सुख किसी अन्य से कभी नहीं आता है, वह अपनी ही की गई वासना से आता है । चाह गई चिन्ता गई ।

त्याग कर त्याग की स्मृति अहंकार मन में बनाये रखना, प्रकट करना, छिपा कर न रख छपवाकर त्याग प्रचार करना, ऐसा करना तो त्याग करने से भी १०० गुना ज्यादा बुरा है ।

जिसे प्राप्त धन सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा यश निकृष्ट दुःख व बन्धन रूप लगता है वही सच्चा वैराग्यवान है ।

जीभ अवश्य बिना हड्डी के तीन इंच छोटी सी है किन्तु वह छह फिट के हाड़ वाले को जलाकर खाक कर देती है ।

इस वाणी से ही अमृत बरसा कर विश्व को अपना बनाया जा सकता है ।

उल्लू को दिन में, कौवे को रात में तथा कामान्ध पुरुष दिन-रात दोनों में नहीं दिखाई देता है ।

प्रतिदिन रात्रि सोने से पूर्व अपने द्वारा की गई सम्पूर्ण भूलों का स्मरण कर आने वाले कल के लिये पुनः न दोहराने की प्रतिज्ञा करें, की गई भूल के लिये प्रायश्चित करें, उपवास करें, जिससे पाचों इन्द्रिय शिथिल एवं दुष्ट मन पवित्र होता है। इस हेतु ब्रह्मचर्य रक्षार्थ आसन, प्राणायाम कुछ व्यायाम करना आवश्यक है ।

जननेन्द्रिय जिसमें शरीर की तमाम इन्द्रियों की नसे जुड़ी है मल त्याग के उपरान्त उस पर शीतल जल डालने से पूरे शरीर में शीतलता छा जाती है । मणी पर पानी धार बनाकर डाले इससे स्वप्न दोष भी नहीं हो सकेगा । जल्दी सोना जल्दी जागना चाहिये । प्रतिदिन दो बार सुबह शाम शौच का अभ्यास करें (एकाशनी के लिये एकबार)ब्रह्मचारी के लिये लिंग मणी पर पानी डालना वर्ज्य है । स्नान घर्षण पूर्वक करें, सूखे तौलिये से अच्छी तरह रगड़ कर स्नान करें जिससे शरीर शुद्ध व बलिष्ठ बनता है । शरीर निरोग रहेगा तो ब्रह्मचर्य में सहायक होगा । सादा जीवन उच्च विचार । शुद्ध विचार रखे । मन ही मनुष्य को गुलाम या स्वामी बनाता है । पापमय विचारों से पापात्मा बनता है इसलिये स्त्रियों से एकान्त बात करना सर्वथा त्याग देवे ।

ब्रह्मचर्य ही जीवन है वीर्य नाश ही मृत्यु है । ब्रह्मचर्य को कोई रोग नहीं सता सकते । दूध से मक्खन खीचा जाता है इसी प्रकार मैथुन से शरीर के समस्त अंगो से वीर्य खीचा जाता है । मक्खन खींचलेने से जैसे दूध असार रूप रह जाता है इसी प्रकार मैथुन के बाद शरीर भी असार, निस्तेज हो जाता है ।

ब्रह्मचर्य – ब्रह्म का अर्थ आत्मा है । आत्मा में तन्मय हो जाना अर्थात् अपने देहभाव को त्याग कर मैं द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ इस निष्ठा में मग्न रहना तल्लीन रहना, ओत–प्रोत रहना ब्रह्मचर्य है ।

अपने दुःख से सब रोते हैं किन्तु दूसरे के दुःख से जिसकी आंखे छलक जाती है वही सच्चा दयालु, धर्मात्मा, परोपकारी संत है चाहे वह गृहस्थ ही क्यों न हो ।

बीड़ी, सिगारेट, तम्बाकू सेवन से वीर्य दुर्बल, इन्द्रिय उत्तेजना बढ़ती है एवं आदमी शीघ्र पतन का रोगी होकर नपुंसक हो जाता है । सिगारेट में निकोटिन व टार नामक धीमा जहर होता है ।

जिस प्रकार चलचित्रों के किसी प्रकार के दृश्य, घटना पर्दे पर अथवा दर्पण पर प्रतिविम्बित कोई भी अच्छे बुरे दृश्य अपना किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता । दर्पण व पर्दा दृश्य प्रतिविम्बित छाया चित्रों से अछूता रहता है । इसी प्रकार मैं आत्मा भी देह, प्राण, इन्द्रिय एवं मन की किसी भी शुभाशुभ क्रिया से अप्रभावित मात्र द्रष्टा साक्षी ही बना रहता है ।

देह, इन्द्रिय, प्राण एवं मन बुद्धि के द्वारा जो भी पदार्थ, पद, विद्या, नाम आदि मिले हैं वह मेरे नहीं है उनसे मुझे ममता तोड़ना होगी एवं जो मेरा नित्य प्राप्त स्वयं सिद्ध स्वरूप है उसी में मैं भाव स्थापित करना होगा । मैं मात्र आत्मा हूँ, द्रष्टा हूँ, साक्षी हूँ ।

सब लोग किधर जा रहे है ? क्या कर रहे है ? क्या कहेंगे ? यह चिन्ता छोड़ो एवं सद्गुरु की शरण जाकर आत्मोद्धार हेतु प्रयत्न करो । संसार तो जा ही रहा है उसे पकड़ने में जीवन नष्ट न करो । आत्मा में ठहरो ।

मैं कहाँ से आया हूँ ? मैं मरकर कहा जाऊंगा ? मैं क्या कर रहा हूँ ? मेरा यहां क्या है ? मैं कौन हूँ ऐसा विचार नित्य किया करो ।

(१) मैं कौन हूँ ? यह जो मेरा भ्रम से कहा जाने वाला शरीर वह मैं नहीं हूँ । नाम शरीर का है, जाति पिता माता की, भाषा भी पिता माता की, सम्बन्धी भी पिता माता के एवं शरीर के जन्म–मृत्यु भी शरीर के हैं । मैं तो मात्र सब को जानने वाला वेदक आत्मा हूँ ।

(२) मेरा क्या है ? इन्द्रियों से अनुभूत कोई पदार्थ मेरा नहीं है । इन्द्रियों का जानना सीमित संसार तक ही है । अज्ञान से

मैंने उन पदार्थों को अपना मान लिया है । घर, दुकान, स्वजन, परिजन, वैभव, सम्पत्ति और शरीर मेरे साथ सदा नहीं है । इसीलिए वे सब मेरे नहीं हैं मेरा तो केवल ज्ञान सच्चिदानंद स्वरूप ।

(३) मैं कहां से आया हूँ । अवश्य ही इस जन्म के पूर्व किसी अन्य परिवार घर जाति में रहा होऊगां, वहाँ किये शुभाशुभ कर्मों के अनुसार वर्तमान देह भोग, रोग, सम्बन्धी, परिस्थिति, संयोग–वियोग, लाभ–हानि मानापमान प्राप्त हो रहा है जिसे सुख दुःख रूप में भोग रहा हूँ एवं अब जो करूँगा वही अगला जन्म होगा पहले जन्म में मैंने कोई धर्म कार्य किया होगा तभी यह देव दुर्लभ मानव जीवन पाया है । अहिंसक, सदाचारी उच्च परिवार में धार्मिक विचारवान गृह में अकस्मात जीव प्रवेश नहीं पा सकता ।

(४) मर कर मैं कहाँ जाऊँगा ? यदि आत्म ज्ञान प्राप्त कर लिया तो यहीं कैवल्य मुक्ति समाधि मरण को प्राप्त हो जाऊँगा । अन्यथा ज्ञानोदय न होने से किसी श्रीमन्त घर में सदाचारी पिता–माता की सन्तान रूप में फिर जन्म होगा । यदि इस जीवन को पाप कर्म में व्यतीत कर दिया तो पशु–पक्षी तिर्यकं योनि में जन्म धारण करूंगा ।

द्रष्टा साक्षी भाव की दृढ़ता अचानक नहीं होती उसके लिये प्रत्येक कार्य में सदैव प्रयास करते रहना चाहिये । व्यवहारिक जीवन में कुछ समय आत्म चिन्तन में अवश्य लगावे । जो भी हो रहा है उसे अनासक्त भाव से देखे उससे निरपेक्ष रहते हुए लिप्त न होवें ।

जीवन में क्रोध भी आवे तो आज्ञा मानकर, अनुमति मांग कर नौकर की तरह आवे । मालिक की तरह कभी भी अचानक न आ धमके ।

याद रखें क्रोध को हर समय अपने सिर नाक पर चढ़ा कर रखना ठीक नहीं है । यदि हम थोड़ा ही झुक गए तो हो सकता है सामने वाला पूरा ही झुक जाए ।

हिन्दु, मुस्लिम सब अपने कमा खा रहे हैं फिर भेद खड़ा है तो अहंकार का । अहंकार का कारण है देहाभिमान, जाति अभिमान ।

प्रभु से मांगना है तो सत्संग मांगो, ज्ञान मांगो, सद्गुरु मांगो, जागरण मांगो । प्रभु के चरणों में चढ़ाना है तो अपने अहंकार को, अपने को चढ़ा कर अपने अहं को मिटादो । एक दूसरे में, एक दूसरे के प्रति समर्पण भाव होता है वही प्रेम होता है बाकी तो सभी व्यापारी लेन देन का हिसाब मांगते हैं कि तूने मेरे लिये क्या किया ? मैंने तेरे लिये यह...वह...किया ।

जब कोई आग बने तो दूसरा पानी बन जाय झगड़ा खतम । पुण्य व दान एकान्त एवं परम गोपनीय होना चाहिये । छपाकर नहीं करना चाहिये बल्कि छिपाकर करना चाहिये । जो शुभ है, धर्म है उसे आज अभी ही कर डालें, नहीं तो मृत्यु के समय हमें पछताना होगा ।

अब वेदान्त को कुछ संन्यासियों की धरोहर न बना कर मानव मात्र के लिये सुलभ बना देने की आवश्यकता है । ताकि उन में समता, प्रेम, दया, क्षमा, सहिष्णुता, निर्भयता, निर्वैरता प्रकट हो सके । महापुरुष समस्त मानव जाति के प्राण होते हैं । जो मुक्ति–दूत बनकर समाज सुधार के लिये इस पृथ्वी पर उतरे थे हमनें उन्हें सम्प्रदायों की कारागृह में डाल दिया । हमारे मन्दिर, मस्जिद, गुरु द्वारे, गिरजा घर क्या कारागृह नहीं है ? जन जन की सेवा दीन दुःखी की सेवा ही परमात्मा की पूजा है । जो व्यवहार हमें अच्छा न लगे, वैसा हम दूसरों के साथ कभी न करें ।

संसार में अच्छा बुरा कुछ नहीं । हमारी जैसी दृष्टि होती है हमें संसार वैसा ही प्रतीत होता है ।

हम गन्दी वस्तु, खराब वस्तु घर में नहीं लाना चाहते इसी प्रकार गन्दे विचार अनीति से कमाया गन्दा धन भी अन्दर नहीं आने देना चाहिये ।

क्रोध आते ही जीभ दान्तों के नीचे बलपूर्वक दबावे । मुठ्ठी कसकर बाधें । जितना पी सके पानी पीवें । १०० से एक तक की उल्टी गिनती करे । क्रोध माचिस की तिली है जो स्वयं पहले जलती है फिर दूसरों को जलाती है । क्रोध कपड़ों पर आयरन प्रेस की तरह गरम होने जैसी स्थिति है जो स्वयं प्रथम गरम होकर बाद में कपड़ों को गरम करती है । क्रोध आने के समय अपना सुन्दर चेहरा दर्पण में देखो एवं तत्काल किसी साथी से फोटो खिंचवाकर एलबम में या घर में उसे बड़ा करवाकर गृह के प्रमुख द्वार पर टांग दो घर में प्रवेश करने वाला साहस नहीं कर सकेगा ।

हर मां अपनी बेटी को सिखावन देती है कि पति परमात्मा है उसको उलट कर जवाब नहीं देना किन्तु कोई बाप अपने बेटे को यह सिखावन नहीं देता कि पत्नी परमात्मा है, उसका अपमान, गाली, तिरस्कार, मार पीट कभी मत करना । बेचारी पत्नियां हर दम पीटी जलाई जाती है ।

क्रोध आता है सामने वाले से कुछ अपेक्षा आकांक्षा मन में छिपाकर रखी है एवं अपने को कुछ समझ रखा है । ख रा ाशींहळपस, मैं भी कुछ हूँ अतः अपेक्षा की उपेक्षा करना ही क्रोध का शमन करना है ।

वैज्ञानिक कहते है क्रोध के समय हमारे रक्त में जहर फैलजाता है । क्रोध की अवस्था में अपने बच्चों को भी स्तन पान न कराएँ । क्रोधी व्यक्ति भयानक है और वह आदमी काट लेवे तो बचने की सम्भावना कम होती है । पागल कुत्ते व काला नाग काट लेवे तो १८ इन्जेक्शन लगाकर बचाया जा सकता है । क्रोधी व्यक्ति का रक्त एक शान्त खरगोश को दियागया तो एक घंटे में वह उछल उछल दाँत से अपने को काटने लगा व एक घंटे में मर गया । क्रोध आता ही तभी है जब हमारे मन के अनुकूल काम न हो अपेक्षा के विपरीत काम होता है । जहाँ अधिकार की बात होगी कि मैं पति तो पत्नी ने आज्ञा न

मानी तो क्रोध निश्चित आयेगा । इसी प्रकार बाप का बेटे पर, मालिक का नौकर पर, गुरु का शिष्य पर क्रोध प्रकट हो ही जाता है ।

जंगल से काम कर सन्ध्या मां घर लौट रही है उसने बच्चे से कहा अरे ! सन्ध्या हो गई दीपक नहीं रोशन किया । यह वाक्य किसी रास्ते से जाते सज्जन ने सुना तो उसे भी विचार जाग गया कि मेरे जीवन की सन्ध्या हो चली व अभी तक ज्ञान का दीपक मैंने प्रगटाया नहीं ।

जीवन एक सपना है और मृत्यु इस सपने से जगा देती है, सपना टूटादेती है । लेकिन सपने को हम सत्य मानते हैं, इसीलिये मृत्यु दुःखदायी मालूम पड़ती है । रात्रि स्वप्न में देखे हुए सुख का नाश होने पर लोग दुःखी होते नहीं देखे जाते । उसी तरह जाग्रत अवस्था में, शरीर, सम्पत्ति, पुत्र, पत्नी, पति का नाश होने पर पण्डित लोग शोक नहीं करते । किन्तु मूर्ख लोग रोते रहते हैं।

जिसका मरण सुधरा उसका जीवन भी सुधरा हुआ होना चाहिये । मृत्यु जीवन भर के शुभाशुभ कर्मों का माप–दण्ड है । जिसकी मृत्यु बिगड़ी तो समझना चाहिये इसका जीवन भी बिगड़ा हुआ ही होना चाहिये । इसलिये मृत्यु सुधारने के लिये जीवन जीने की कला सीखना होगा ।

किसी बूढ़े को कमर झुकाये लकड़ी के सहारे चलता देखकर कभी हंसना नहीं चाहिये । अपितु ऐसा सोचे कि यह वृद्धावस्था मेरे जीवन में भी घटने वाली है । किसी की गरीबी अवस्था देखकर कभी न हंसे । बल्कि ऐसा सोचे कि ऐसी घटना कल मेरे जीवन में भी घटना सम्भव है । यदि मैं भी दान पुण्य नहीं करूंगा तो कल मैं भी भिखारी बन सकता हूँ ।

किसी मृतक पुरुष की अर्थी देखकर अपनी मृत्यु का भी बोध ले लेना चाहिये कि आने वाले समय में इस मेरे कहलाने वाले

शरीर की भी मृत्यु निश्चित है । ''जीवन एक यात्रा है जिसकी समाप्ति मृत्यु है ।''

शरीर के प्रति रहे तीव्र राग के कारण ही व्यक्ति जीवन भर की मेहनत से की कमाई को रोग आजाने पर पानी की तरह बहाने को तैयार हो जाता है । शरीर के रोगों को मिटाने के लिये शरीर को बचाये रखने के लिये हम सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं । शरीर के रक्षण हेतु जीव ने अनेक प्रकार के निर्दोष प्राणीयों को मरवाकर खाया है। यह देह की ममता तो साधु सन्यासी को भी सताती है । जिस वस्तु पर हमें राग नहीं उसके नष्ट हो जाने पर हमे कोई दुःख की अनुभूती नहीं होती । उसके नाश से हमें कोई चिन्ता नहीं होती । किसी को आग में जलते देखते, हत्या का दृश्य टी.वी. पर देखते हुए भी मौज से खाते पीते रहते है यदि अपने पति, पत्नी, बच्चे, घर मकान की कोई प्रतिकूल खबर मिलते ही खाना पीना हराम हो जाता है छाती, सिर पीट चीख–चीख कर रोने लग जाते हैं ।

- ✪ शरीर में डायबिटीस् हो जाय तो, डाक्टर की सलाह पर सभी मीठे पदार्थ त्याग देते हैं ।
- ✪ हार्ट की बिमारी हो गई तो, सभी गरीष्ठ भोजन घी, तेल, आदि त्याग दिये जाते हैं ।
- ✪ पाचन क्रिया खराब हो जाय, तो रुचिकर नमकीन, तेल, तली वस्तु छोड़ देते है ।
- ✪ शरीर के रोग निवारण हेतु कड़वी गोली भी ग्रहण कर लेते हैं ।
- ✪ शरीर रोग निवारणार्थ आसन प्राणायाम भी करना स्वीकार कर लेते है ।
- ✪ हम अपने घर में आनेवाली प्रत्येक वस्तु को अच्छी तरह देख परखकर लाते हैं । किसी गन्दी, सड़ी, टूटी–फूटी वस्तु को

घर में नहीं लाते हैं । जब हम घर में धन कमाकर लाते हैं, जेब में रूपया कमाकर रखलाते हैं तब यह क्यों नहीं देखते हैं कि यह अच्छी कमाई कर ले जा रहे हैं या गलत कमाई कर ले जा रहे हैं ।

✪ कपड़े बिगड़ जाय तो कोई बात नहीं, स्वास्थ्य बिगड़ जाय तो, भोजन का स्वाद बिगड़ जाय, व्यापार बिगड़ जाय, रूप बिगड़ जाय कोई चिन्ता नहीं यह सब फिर ठीक हो जायेगा किन्तु अपने द्वारा किसी का दिल न बिगड़ने पावे क्योंकि उसमें अपना दिलवर प्रभु का वास है ।

✪ जिसे महावीर, राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक, मीरा, कबीर, तुलसी ने अपने भीतर पहचाना । तो फिर हमारे भीतर हम उसे क्यों नहीं जान सकेंगे ? राम, कृष्ण, मीरा, तुलसी भी तो हमारी ही तरह हाड़, मांस, रक्त, मल से बने लोग थे और हमारी तरह वे भी इन्ही परिस्थितियों में उलझे लोग थे । अगर वे जाग सके तो हम क्यों नहीं जाग सकेंगे और हम नहीं जागे तो यह हमारा अपमान है । अगर एक भी मनुष्य जागा है तो दूसरा भी जाग सकता है क्यों न हम अपने को वह दूसरा मनुष्य जाने । वह दूसरा मनुष्य होने का प्रत्येक मनुष्य प्रयास करे । लाट्री पुरस्कार किसी एक को मिलता है किन्तु लाखों व्यक्ति अपने को उस एक होने की अपेक्षा रख प्रयास करते हैं । बस प्यास जगाओ वस्तु तो घर में ही है कहीं बाहर न खोजना है न पुकारना है ।

✪ यात्रा में कहीं जाने हेतु अपने लिये स्थान आरक्षण करालेते हैं ताकि गाड़ी आने के पूर्व कोई चिन्ता नहीं रहती किन्तु आरक्षण न हो तो चिन्ता भय बना रहता है । इसी तरह मृत्यु आने से पूर्व अपने मोक्ष का आरक्षण न किया तो जन्म मृत्यु का भय बना रहेगा, दुर्गति निश्चित होगी ।

शरीर से जब ममता हट जाती है तभी सच्ची मुमुक्षुता आध्यात्मिकता जाग्रत होती है अन्यथा कोई लाख समझावे तो भी विषयों से, शरीर से ममत्व नहीं छूटता ।

मृत्यु का बोध होने से दुष्ट दुराचारी, चोर भी धर्म कर्म करने लग जाते है । जिसका कर्ज लिया था उसे देने का विचार नहीं था किन्तु मृत्यु का बोध होते ही कर्ज चुका आता है । जिससे शत्रुता थी उनसे घर जाकर क्षमा मांग आता है । जिनसे बेरूखी से बात करता था उनसे प्रेम सम्बन्ध बनालेता है । पहले धर्म व संत से नफरत करता था, मजाक उड़ाता था, अब श्रद्धा व प्रेम करने लग जाता है । **'मृत्यु को सदा स्मरण रखना ।'**

''सर्वं परवशं दुखं, सर्व आत्मवशं सुखम्''

जो दूसरों के ऊपर निर्भर रहता है वह दुःखी भयभीत रहता है ।

जो आत्म निर्भर होता है वह तो सर्वदा सुखी रहता है ।

ॐ शान्तिः शन्तिः शन्तिः ।

मुझे मत मारो

गर्भपात को अधिकांश लोग शल्य क्रिया न मानकर एक साधारण सी सफाई मानते हैं जैसे कपड़े, बर्तन, घर की सफाई की तरह ।

गर्भ में जीव का अस्तित्व प्रथम क्षण अर्थात् सम्भोग के क्षण अण्डाणु और शुक्राणु के संयोग से ही आ जाता है । जब गर्भवती को यह पता चलता है कि उसके गर्भ में बच्चा है तभी उस गर्भस्त बच्चे का दिल धड़क रहा होता है । इसलिये गर्भपात अबोर्शन एक जीवित प्राणी की निर्दयता पूर्ण हत्या है ।

अबोर्शन कराने वाली महिला किसी को अबोर्शन कराते यदि देख ले तो कभी अबोर्शन कराने के लिये तैयार नहीं हो सकेगी । प्रायः अबोर्शन के लिये पुरुष स्त्री को ज्यादा मजबूर करते हैं, मार–पीट करते हैं अथवा किसी बहाने से डाक्टर के पास ले जाते हैं । वहां किसी प्रकार की झूठ जांच के बहाने यह कुकर्म उनके द्वारा सहर्ष होता है । अबोर्शन कराने वाले स्वयं देखें तो उन्हें पता लग सके कि किस प्रकार एक जीवित प्राणी के टुकड़े कर– करके उसे गर्भाशय से निकाला जाता है ।

गर्भपात से होने वाले खतरे

(१) अत्यधिक रक्त स्त्राव से माँ की मृत्यु हो सकती है ।

(२) भविष्य में बच्चे होने की सम्भावना कम हो जाती है ।

(३) बच्चे दानी कमजोर हो जाने से पुनः गर्भाशय में गर्भ ठहरना सम्भव नहीं हो सकेगा ।
(४) भविष्य में बच्चा कमजोर और अपंग हो सकता है ।
(५) मासिक धर्म में खराबी, कमर दर्द की शिकायत बढ़ जाती है ।
(७) गर्भाशय में सूजन, संक्रमण, गर्भाशय काट निकाल फेंकना भी सम्भव है ।

गर्भस्थ बच्चे का गर्भपात जब किया जाता है तब उसे यह वेदना उसी प्रकार होती है जिस प्रकार जल से बाहर निकाल देने पर मछली उछल–उछल कर तड़प–तड़प कर प्राण छोड़ देती है । ठीक गर्भस्थ बच्चे की मृत्यु भी इसी प्रकार अत्यन्त हसहनीय पीड़ा जनक होती है ।

अपनी ही सन्तान को खड़े होकर प्रसन्नता से मरवा देने वाली स्त्री व पुरुष को किस प्रकार अपमानित किया जाय ऐसा कोई शब्द समझ में नहीं आता है ।

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जो प्राचिन काल में कहावत प्रसिद्ध थी आज इस से उल्टा देखने में आता है । **'जननी जन्मभूमिश्च नरकादपि गरीयसी'** ।

अब डाक्टर द्वारा गर्भपात कैसे किया जाता है उसे देखें ।

बारह सप्ताह में बच्चे की आँख, नाक, मुँह मस्तिष्क, आगे की पसलियाँ तथा पीछे रीढ की हड्डियाँ, पैर, हाथ एवं अगुँलियाँ अल्ट्रा साउन्ड मशीन द्वारा देख सकते हैं ।

गर्भाशय में बच्चा मांस पेशियों में लपटा पड़ा होता है । गर्भपात कराने वाला डाक्टर पहले स्त्री के योनि द्वार पर स्पैकूलम नामक यंत्र रखता है फिर उस यंत्र द्वारा योनि द्वार को फैलाया जाता है ।

जिसके द्वारा डाक्टर को यह गर्भाशय द्वार व उसके का दृश्य दिखाई पड़ता है उसके बाद डाक्टर 'एना कुलम' नामक दूसरा उपकरण लगाता है । जिसके द्वारा गर्भाशय के द्वार को मजबूती से जकड़ा जाता है ।

योनि द्वार से इसके बाद ध्वनि यंत्र गर्भाशय के गहराई एवं आकार को मापने हेतु लगाया जाता है ।

उसके बाद चौड़ा करने वाले यंत्र का सिर व पैर लोहे के घुमावदार उपकरण द्वारा गर्भाशय के द्वार को इस तरह फैलाया जाता है कि गर्भपात यंत्र सही जगह बैठाया जा सके ।

अब गर्भपात कर्ता डाक्टर सबसे पहले पतले उपकरण को गर्भाशय में डालकर गर्भाशय के द्वार को खोलता है ।

फिर सक्शन ट्यूब (खींचने वाला यंत्र) गर्भाशय तक पहुँचाने के लिये अन्दर डाला जाता है और sterile पदार्थ द्वारा बच्चे के चारों ओर स्थित थैली को छेदा जाता है जिससे Ambiotic नामक तरल पदार्थ बाहर निकल जाता है । अब यह उपकरण बच्चे को जाकर जकड़ लेता है । फिर सक्शन ट्युब की नली शरीर के टुकड़े–टुकड़े करना आरम्भ करती है । ये टुकड़े एक–एक करके अलग किये जाते हैं और सक्शन उपकरण द्वारा उन्हें बाहर किसी बाटल में खींच संग्रह करता रहता है । यह सक्शन क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक बच्चे के शरीर के कुछ चीथड़े और सिर शेष रह जायँ ।

यंत्र के बने तेज धार वाले हाथों से उसके सिर को मजबूत चिमटे से पकड़ कर काटा जाता है । इस तरह बे रहम माता पिता की इच्छा से निर्दयी डाक्टर लोहे के औजार से जीवित बच्चे को गर्भ में ही कुचल–कुचल, टुकड़े टुकड़े कर छिन्नभिन्न कर देते हैं ।

सक्शन ट्युब द्वारा बच्चे का सिर बाहर नहीं निकल पाता है, क्योंकि बच्चे का सिर बड़ा होता है एवं नली छोटी होती है । अब डाक्टर एक मजबूत चिमटे से इस बच्चे के सिर को पकड़ता है । इसके बाद सिर के कुचल कर छोटे छोटे टुकड़ों में काट देता है और इसी तरह हड़्डियों को तोड़–मोड़ कर बाहर ले आता है । इस तरह गर्भपात की क्रिया समाप्त होती है ।

गर्भस्थ बच्चे की दिल की धड़कन १४० प्रति मिनट की गति से होती रहती है ।

जब सक्शन टिप जो बच्चे की तरफ बढ़ती है तो वह बच्चा उससे दूर भागता है पीछे हटता जाता है । बच्चा भयंकर रूप से डरने लगता है एवं मूक आवाज में कहता है **मुझे मत मारो मैं बेकसूर हूँ । मुझे बचाओ । मेरी मृत्यु से पूर्व मुझे मत मारो ।**

याद रखो ! जिस तरह तुम मुझे मार रहे हो एक दिन तुमको भी मैं इसी तरह तड़पा–तड़पा कर मारूगाँ । डाक्टर के मारने की प्रक्रिया को देख बच्चा और भी ज्यादा उत्तेजित एवं भयभीत हो जाता है । कभी–कभी ज्यादा शक्ति से बच्चे को बाहर की ओर खींचने से बच्चे दानी भी बाहर आजाती है । ऐसी अवस्था में कभी स्त्री की भी मृत्यु हो जाती है । बच्चे के दिल की धड़कन इस समय १५० से २०० प्रति मिनिट हो जाती है ।

इस प्रकार के नीच कर्मों के करने में लाखों क्लीनिक चल रहे हैं जो दस बारह हजार रूपया एक गर्भपात करने के लिये चार्ज लेते हैं । इस कमाई में ९०% डाक्टरों के जेब में तथा १०% क्लीनिक के मालिक को प्राप्त होता है । इस प्रकार २५ लाख गर्भपात प्रति वर्ष किये जाते हैं ।

गर्भपात कराने के पीछे दहेज प्रथा मुख्य कारण है । लड़के के पिता विवाह के समय लड़की के पिता से जो दहेज मांगते हैं एवं लड़की का पिता दे नहीं पाता है तब ऐसी स्थिति में जवान लड़की खुदकुसी कर मर जाती है या घर छोड़ वैश्यावृत्ति कर माता पिता को दहेज के बोझ से मुक्त कर देती है । इस प्रकार के दोनों पापों के लिये दहेज लेने वाले लड़के के पक्ष को पाप का भागी बनना पड़ता है ।

डाक्टर लोग रुपया कमाने के प्रलोभन में दो मास के बच्चे प्रति लड़की होने का झूठा भय दिलाकर गर्भपात कराने के लिये गर्भवती स्त्री एवं पुरुष को सलाह देते हैं । जब की दो मास के बच्चे

को मशीन द्वारा भी नहीं जांच सकते हैं कि यह लड़का होगा या लड़की । इस व्यवसाय द्वारा २९ करोड़ रुपया प्रति वर्ष कमाया जा रहा है ।जो दुनियां के पूर्ण बड़े उद्योगों में से एक स्थान लेता है ।

इस प्रकार गर्भपात से स्त्री लिंग कम हो ते चले जा रहे हैं जो भविष्य के पुरुषों के लिये विवाह के लिये लड़की मिलना एक समस्या हो जावेगी । एक दिन यह अवस्था होने वाली है जब कि दो लड़को के बीच एक पत्नी द्वारा जीवन चलाना होगा । जैसे कि एक द्रोपदी पांच पांडव भाइयों द्वारा भोगी जा रही थी ।